



सटीकः

वैद्यक-परिभाषा-प्रदीपः ।



श्रीमद्गोविन्दसेनसंगृहीतः ।

पण्डितकुलपति

श्रीमज्जीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्यात्मजेन

पण्डित श्रीआशुबोध विद्याभूषणभट्टाचार्येण

विरचितया टीकया समलङ्कितः तनेव प्रकाशितश्च ।



द्वितीय संस्करणम् ।

कलिकातामहानगर्याम्

वाचस्पत्ययन्त्रे मुद्रितः । ३

इं १८३४ ।



# सूचीपत्रम् ।

## प्रथमः खण्डः ।

| विषयः ।                             | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------------|---------------|
| भङ्गलाचरणम्                         | ...           |
| मूर्तः परिचयः                       | ...           |
| मूर्तनिर्देशः                       | ...           |
| उपयोगितानिर्देशः                    | ...           |
| अभिधेयनिर्देशः                      | ...           |
| अथ प्रथमतो ज्ञानपूर्व खिद्यते       | ...           |
| काखिद्यपरिभाषा                      | ...           |
| द्रवादेशकद्रव्याणां ज्ञानविधौ       | ...           |
| विशेषनिर्देशः                       | ...           |
| कुडवमानस्य विशेषनिर्णयः             | ...           |
| योगानां ज्ञाननिर्देशविधिः           | ...           |
| अथ ज्ञानपरिभाषा                     | ...           |
| शुद्धाद्रवद्रव्याणां ज्ञानविधौ      | ...           |
| विशेषनिर्देशः                       | ...           |
| सुष्मापेक्षया आद्रव्य द्विगुणयद्वय- | ...           |
| विधिः                               | ...           |
| अस्वापवादमाह                        | ...           |
| अथ द्रव्याणामुपयुक्तामुपयुक्तत्वमाह | ...           |
| प्रसङ्गात् स्नेहादर्शनामुक्तमाह     | ...           |
| शोणविशेषे गणोक्तद्रव्याणां द्विगोप- | ...           |
| देयत्वनिर्देशः                      | ...           |
| अथ प्रसक्तदेशकद्रव्यमाह             | ...           |
| अथ निषेधमाह                         | ...           |
| अथ भूतापसारणः                       | ...           |
| सुधीकारणमन्त्रः                     | ...           |
| सुद्धाद्रवविधिः                     | ...           |

| विषयः ।                           | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------------|---------------|
| अथ औषधद्रव्याङ्गयद्वयमाह          | ...           |
| द्रवादौ औषधप्रयोगे कर्तव्य-       | ...           |
| निर्देशः                          | ...           |
| विषयसेटे द्रव्ययद्वयन             | ...           |
| अथ ऋतुभेदे द्रव्याङ्गयद्वयमाह     | ...           |
| सामान्योक्तौ द्रव्ययद्वयमाह       | ...           |
| सास्ययद्वयविधिः                   | ...           |
| वृत्तवैलक्ष्याः क्षान्तयद्वयविधिः | ...           |
| वतुष्यटेषु शृङ्गालस्य विश्व-      | ...           |
| निर्देशः                          | ...           |
| क्षान्तयद्वये ब्रह्मवैद्यव्यवहारः | ...           |
| मृत्वादिपदेषु नियमनिर्देशः        | ...           |
| अथानुक्तौ द्रव्ययद्वयम्           | ...           |
| अथाभावे द्रव्ययद्वयम्             | ...           |
| पञ्चमोद्गात्रप्रयोगे विशेषविधिः   | ...           |
| प्रतिनिधियद्वयस्य विशेषस्थ-       | ...           |
| निर्देशः                          | ...           |

## द्वितीयः खण्डः ।

|                          |     |
|--------------------------|-----|
| अविधकषाशमाह              | ... |
| स्वरसमाह                 | ... |
| स्वरसाभावे तदनुकल्पविधिः | ... |
| भूतान्तरम्               | ... |
| मन्त्रं ज्ञानज्ञानमाह    | ... |



| विषयः ।                                 | पृष्ठाङ्काः । | विषयः                              | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|------------------------------------|---------------|
| स्वस्वभेदात् पुटपाकविधिमाह              | २७            | पाचनादौ जलपरिमाणमाह ...            | ३६            |
| कल्कमाह                                 | ...           | २८                                 | ...           |
| कल्कलोडनाथे मध्वादीनां नावा             |               | निर्देशः                           | ...           |
| निर्देशः                                | ...           | जलपरिमाणप्रसङ्गतः पाचनाना          | ...           |
| कल्कस्येवप्रेक्षाज्ञमाह                 | ...           | द्रव्यपरिमाणमाह                    | ...           |
| अथ काचमाह शाङ्गधरः                      | ...           | अथ यथावत्पादसाधने जलभेदजयोः        | ...           |
| पानीयक'स्य पानकालं नावा-                |               | परिमाणमाह                          | ...           |
| निर्देशः                                | ...           | ३८                                 | ...           |
| क्रोधे दोषभेदात् प्रवेप्यस्त्रिणामधुनोः |               | पानीयसाधने जलभेदजयोः मान-          | ...           |
| नामानिर्देशः                            | ...           | निर्देशः                           | ...           |
| श्रीतमाह                                | ...           | कल्कसाध्यां पेयमाह केशरीः          | ...           |
| अबान्तरभेदात् तण्डुलोदकमाह              | ...           | दोकाकारः                           | ...           |
| अथ फण्डमाह                              | ...           | यथागुग्गुले तण्डुलप्रकारमाह        | ...           |
| प्रसङ्गादुन्नीतमाह                      | ...           | अन्नादिसाधने तण्डुलप्रकार-         | ...           |
| कायादेरबान्तरभेदात्तेजोहादिक-           |               | माह                                | ...           |
| माह                                     | ...           | अन्नादिसाधने जलपरिमाण-             | ...           |
| चटुकार्तिनामभेदे कारण-                  |               | माह                                | ...           |
| निर्देशः                                | ...           | मण्डादिलेखणमाह                     | ...           |
| अथ द्रव्याणां नावाविधि-                 | ...           | यथान्वाः यथागुग्गुलेष्वधिकमन्वायाथ | ...           |
| लिख्यते                                 | ...           | पाकविधिः                           | ...           |
| प्रसन्नवज्जानलादौ नावाविधिष-            | ...           | यथागुग्गुलाः                       | ...           |
| निर्देशः                                | ...           | विलेप्याः पाकविधिर्गुग्गुलाश्च     | ...           |
| पुडोहकादीनां व्यवहारिकी                 |               | पेयार्थयोः पाकविधिः                | ...           |
| नावा                                    | ...           | पेयार्थयोर्गुग्गुलाः               | ...           |
| पानुरसादीनां व्यवहारिकी-                |               | मन्त्रस्य पाकविधिः गुग्गुलाश्च     | ...           |
| नावा                                    | ...           | मण्डपाकविधिः                       | ...           |
| काञ्चिज्ज्ञानं मागधस्य सेहलोक्तिः       | ...           | अथ मासस्यसाधनविधालमाह              | ...           |
| काञ्चिज्ज्ञानं मागधस्योः प्रयोगस्तुल-   | ...           | जाकारस्यसाधनमाह                    | ...           |
| निर्देशः                                | ...           | अथ मन्त्रपरिधिमाह                  | ...           |

| विषयः ।  | पृष्ठाङ्काः । | विषयः ।                             | पृष्ठाङ्काः । |
|--|---------------|-------------------------------------|---------------|
| चूर्णोदोना भक्षणप्रकारमाह ...                      | ४१            | निविधपाकलक्षणम् ...                 | ६१            |
| मत्तान्तरमाह द्रव्यविशेषः ...                      | ४२            | गुडादिमदितलोहपाकलक्षणम् ...         | ६२            |
| दोषभेदे मनुष्यैर्योः प्रत्येक-                     |               | अथ भावनाविधिः ...                   | ६३            |
| मानमाह ...   | ४३            | भक्षणार्थे क्वाथपाकविधिः ...        | ६४            |
| जीरादिपाकमाह ...                                   | ४४            | अथ चारोदकमाह ...                    | ६५            |
| — — —  |               | “ हिरुक्तद्रव्यपचयम् ...            | ६६            |
| <b>तृतीयः खण्डः ।</b>                              |               | “ चूर्णस्य पाकनिषेधमाह ...          | ६७            |
| अथ स्नेहसाधने क्वाथगुणादेः                         |               | चूर्णादो गुडस्य मात्रानिर्देशः ...  | ६८            |
| परिमाणमाह ...                                      | ४५            | पञ्चगव्येन निर्देशे मावायकविधिः ... | ६९            |
| अथ स्नेहनिष्यतिललक्षणमाह ...                       | ४६            | अनुपानाकरणे दोषनिर्देशः ...         | ७०            |
| चारस्य पाकनिष्ठलक्षणम् ...                         | ४७            | अनुपानस्य हेतुनिर्देशः ...          | ७१            |
| निविधः स्नेहपाकः, तेषां लक्षणानि च ...             | ४८            | अनुपानगुणाः ...                     | ७२            |
| विषयविशेषे क्वादिपाकविधिः ...                      | ४९            | दोषभेदे अनुपाननिर्देशः ...          | ७३            |
| क्वादिपाकस्य प्रयत्नादिनिर्देशः ...                | ५०            | स्नेहपाने अनुपानविशेषः ...          | ७४            |
| अन्यपाकलक्षणमाह ...                                | ५१            | सामान्यतोऽनुपाननिर्देशः ...         | ७५            |
| व्युत्थ्य व्युत्थ्य पाके स्नेहादीनां गुणवैशिष्ट्य- |               | अथानुपानमात्रमाह ...                | ७६            |
| निर्देशः ...                                       | ५२            | व्यक्तिभेदे मात्रानिर्देशः ...      | ७७            |
| व्यष्टिब्रौह्मादिक्वाथस्य सप्तोषत्वनिर्देशः ...    | ५३            | अथ लोहानुपानमाह ...                 | ७८            |
| अथ गुडपाकलक्षणमाह ...                              | ५४            | अथानुपानविशेषमाह ...                | ७९            |
| गुग्गुलुपाकलक्षणम् ...                             | ५५            | रोगविशेषे अनुपाननिषेधः ...          | ८०            |
| गुग्गुलुसेवनमात्रानिर्देशः ...                     | ५६            | अथ शिशोर्भेषजपरिमाणम् ...           | ८१            |
| अथ लोहशोधनादिपरिभाषामाह ...                        | ५७            | अतिशिशोः शौषधप्रयोगविधिः ...        | ८२            |
| अश्वगंधोषनपरिभाषा ...                              | ५८            | विविधकालनिर्देशः ...                | ८३            |
| क्वाथद्रव्याणां तैविध्यनिर्देशः ...                | ५९            | अथ भेषज्यमन्त्रकालमाह ...           | ८४            |
| पतञ्जलिमाह सामान्यपरिभाषां                         |               | रोगविशेषे शौषधमन्त्रकालः ...        | ८५            |
| लोहमारणार्थम् ...                                  | ६०            | मत्तान्तरे रोगविशेषे शौषधमन्त्र-    |               |
| अथ लोहपाकलक्षणमाह ...                              | ६०            | कालः ...                            | ८६            |
| असंयुक्तपञ्चोदलक्षणम् ...                          | ६१            | प्रथमकालः ...                       | ८७            |
|  |               | द्वितीयकालः ...                     | ८८            |

| विषयः ।                        | पृष्ठाङ्काः । | विषयः ।                           | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| तृतीयकालः                      | ३१            | अष्टवर्गः ( जीवनीयाष्टकम् )       | ७६            |
| चतुर्थकालः                     | ३२            | जीवनीयगणः                         | ११            |
| पञ्चमकालः                      | ३३            | श्वेतमरिचं, ज्येष्ठास्व सुखोदकञ्च | ११            |
| ग्रन्थस्तक्रियायाः निर्देशः    | ३४            | गुडास्व                           | ११            |
| निन्दितक्रियाया                | ३५            | वैश्वारः                          | १२            |
| क्रियासाध्यनिषेधः              | ३६            | अस्त्रमूलकम्                      | १२            |
| साध्यस्यार्थनिर्देशः           | ३७            | कटुर विविधतन्त्रञ्च               | ७७            |
| रसस्य परिणतौ दिनावधिनिर्देशः   | ७३            | दधिकूर्चिका तक्रूर्चिका च         | १२            |
| उचितक्रियाकालस्य अनुपेक्षणीयता |               | शुक्तम्                           | १३            |
| निर्देशः                       | ३८            | शोधः, आसवः, मेरिथम्               | १३            |
| चतुरस्र पञ्चालञ्च              | ३९            | आरनालम्                           | १३            |
| पञ्चलवणम्                      | ४०            | अस्त्रवटकाः                       | १३            |
| अष्टमूलम्                      | ४१            | कशरा विशरा वा                     | ७८            |
| चतुःखण्डाः                     | ४२            | खल्यचुक्रम्                       | १३            |
| अष्टचौरम्                      | ४३            | आसवारिष्टथोर्लक्षणम्              | १३            |
| चातुर्जातक-विजातके             | ४४            | शोधुम्भक                          | १३            |
| सर्वगन्धः                      | ४५            | सुरायाः प्रकारभेदे नामानि         | १३            |
| विफलाद्यम्                     | ४६            | गुडेक्षुष्टरीकाशुक्तानि           | १३            |
| द्रुपणं, विमदश्च               | ४७            | तुषास्व-सौवोरादीनि                | ७९            |
| पञ्चचौरिखण्डाः                 | ४८            | तुषोदकम्                          | १३            |
| पञ्चपल्लवम्                    | ४९            | काञ्जिकम्                         | १३            |
| पञ्चकोलम्                      | ५०            | शिखण्डी                           | १३            |
| षड्वणम्                        | ५१            | सधुयुक्तम्                        | १३            |
| सहत् पञ्चमूलम्                 | ५२            | खड्गपञ्चमूलकथोर्लक्षणम्           | १३            |
| खल्यपञ्चमूल दशमूलञ्च           | ५३            | प्रमथ्या तपणञ्च                   | ८०            |
| दशपञ्चमूलम्                    | ५४            | सन्धः                             | १३            |
| यक्ष्मोपञ्चमूलम्               | ५५            | उणोदकम्                           | १३            |
| आयुष्यपञ्चमूलम्                | ५६            | मेघजनामानि                        | १३            |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

## चतुर्थः खण्डः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| शोधनप्रज्ञा                               | ... | ८० |
| पञ्चकर्मणा नष्ट                           | ... | ८१ |
| शोधनसञ्ज्ञाया हेतुः                       | ... | ११ |
| नखादिप्रयोगे वयोनिर्देशः                  | ... | ११ |
| वसनप्रयोगविधिः                            | ... | ८२ |
| शोधनप्रयोगार्हमासः                        | ... | ११ |
| अल्पपादिकाले शोधनस्या-<br>क्तव्यता        | ... | ११ |
| साधारण-कृत्यव्यनिर्देशः                   | ... | ८३ |
| सम्यग्बसनलक्षणम्                          | ... | ११ |
| वसनगुणाः                                  | ... | ८४ |
| असम्यग्बसिते दोषमाह                       | ... | ११ |
| अज्जिवसिते                                | ... | ११ |
| क्रियाया उपयुक्तकालस्य अनुपेक्ष-<br>णीयता | ... | ११ |
| अथ वसनभेषजमावासाह                         | ... | ११ |
| मत्तान्तरे सावानिर्देशः                   | ... | ८५ |
| वसने उष्णमधुनः अदोषत्वे हेतुः             | ... | ११ |
| वसनानर्हाः                                | ... | ८६ |
| वसननिषेधस्य अपवादविधिः                    | ... | ११ |
| अवस्थाविशेषे मुखनि वसन-<br>निर्देशः       | ... | ११ |
| वसनविरचनाहकालः                            | ... | ११ |
| वसनाहर्हाः                                | ... | ११ |
| वसनानर्हाः                                | ... | ८७ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| अवाप्त्यानामवस्थाविशेषे वास्यत्व-<br>निर्देशः       | ... | ८७ |
| मत्तान्तरे काथस्थोत्तमादिमावा-<br>निर्देशः          | ... | ८८ |
| कल्कादीनामुत्तमादिमावा-<br>निर्देशः                 | ... | ११ |
| वसने वेगिक्यान्तिकोष्ठद्वौ उत्तमादि-<br>वेगनिर्देशः | ... | ११ |
| दोषविशेषे द्रव्यविशेषनिर्देशः                       | ... | ११ |
| विरचनविधिः  | ... | ८९ |
| सम्यग्योगयुक्तस्य विरचनस्य<br>गुणाः                 | ... | ११ |
| अवाप्तस्य विरचने दोषनिर्देशः                        | ... | ११ |
| दोषपरि-<br>हारोपायः                                 | ... | ११ |
| वेरेचनिककालनिर्देशः                                 | ... | ११ |
| विरचनानर्हाः  | ... | ९० |
| विरचनाहर्हाः  | ... | ११ |
| दोषभेदेन सृष्टादिकोष्ठनिर्देशः                      | ... | ११ |
| विरचने वेगिक्यान्तिकोष्ठद्वौ<br>उत्तमादिवेगनिर्देशः | ... | ११ |
| वेरेचनिककषायाणां श्रेष्ठादिमावा-<br>निर्देशः        | ... | ९१ |
| मत्तान्तरे दोषभेदेन सृष्टादिकोष्ठ-<br>निर्देशः      | ... | ११ |
| मत्तान्तरे उत्तमादिमावानिर्देशः                     | ... | ११ |
| शोधनचतुष्टयस्य नामनिर्देशः                          | ... | ९२ |

| विषयः ।                                | पृष्ठाङ्काः । | विषयः ।                                    | पृष्ठाङ्काः । |
|--|---------------|--|---------------|
| वमनविरिक्तयोर्वैगकीशुद्धौ अघन्यादि     | ८२            | विधिसुखेन प्रधमनस्य लक्षणनिर्देशः          | ८६            |
| वेगस्य तथा विरेके मानिकीशुद्धौ         |               | वेरेचननस्यस्य विषयनिर्देशः ...             | ८८            |
| अघन्यादिमानस्य निर्देशः ...            |               | स्नेहिकनस्यस्य विषयः ...                   | १००           |
| वमनादौ प्रत्यमानस्य वैशिष्ट्य-         |               | अवपीडनस्यस्य ,,                            | १०१           |
| निर्देशः ...                           | ८३            | प्रधमननस्यस्य ,,                           | १०२           |
| वमनविरिक्तयोरान्तिकीशुद्धेर्वमनस्य     |               | नस्यभेदस्नेहिकनस्यस्य साद्वानिर्देशः       | १०३           |
| च मानिकीशुद्धेर्निर्देशः ...           | ८३            | नस्यकर्म्मोपयोगिवयोनिर्यदेशः ...           | ८८            |
| वमनविरिक्तयोर्वैगसञ्ज्ञाया विशिष-      |               | नस्यानर्हाः                                | १०४           |
| निर्देशः ...                           | ११            | अनुवासनविधिः                               | १०५           |
| वमनस्य सम्यग्योगलक्षण्येनान्तिकी-      |               | वास्तिनेत्रस्य उपपादाननिर्देशः ...         | १०६           |
| स्नेहिकीशुद्धिनिर्देशः ...             | ८४            | यद्योभेदेन वास्तिनेत्रस्य परिमाणादि-       |               |
| विरिक्तस्य सम्यग्योगलक्षण्येन स्नेहिक- |               | निर्देशः                                   | १०७           |
| व्यान्तिकीशुद्धिनिर्देशः ...           | ११            | अणिंकायस्यवस्था वास्तिपुटकस्योप-           |               |
| विरिचनावयोगस्य लक्षणम्                 | ११            | करणानि च                                   | १०८           |
| विरिचनातियोगस्य ,,                     | ११            | वास्तिपुटकस्य स्वरूपादिकम्                 | १०९           |
| विरिचनानर्हाः                          | ८५            | व्रणवास्तिनेत्रस्य परिमाणादिनिर्देशः       | ११०           |
| अविरिचानामवस्थाविशिषे विरिच्यत्व-      |               | वास्तिनेत्रस्य ग्रन्थान्तरोक्तम् उपपादानम् | १११           |
| निर्देशः ...                           | ११            | यद्योभेदेन ग्रन्थान्तरोक्तनेत्रपरिमाणा-    |               |
| नस्यस्य द्वैविध्यं कार्याच्च           | ११            | दिकम्                                      | ११२           |
| ,, निरुक्तिः पर्यायश्च                 | ११            | वास्तिपुटकस्य उपकरणानिनिर्देशः             | १०२           |
| दोषविशिषे नस्यदानकालनिर्देशः           | ८६            | निश्चयस्य द्रव्य वास्तिनिरुक्तिश्च...      | ११३           |
| नस्यस्य अवान्तरभेदनिर्देशः ...         | ११            | वास्तिवृद्धस्य प्रयोगक्रमः                 | ११४           |
| प्रतिमर्शलक्षणम्                       | ११            | उत्तरवास्तिः                               | १०३           |
| प्रतिमर्शप्रयोजनम्                     | ११            | मावावस्तेर्मावानिर्देशः                    | ११५           |
| अवपीडस्य द्वैविध्यं निरुक्तिश्च ...    | ११            | अनुवासनानर्हानर्हाः                        | ११६           |
| नस्यभेदस्नेहिकनस्यस्य प्रयोगविषयः      | ८७            | आस्थापनानुवासनानर्हाः                      | ११७           |
| मृतान्तरं नस्यभेदनिर्देशः              | ११            | सम्यक् प्रयुक्तस्य वस्तेर्गुणाः            | ११८           |
| ,, अवपीडस्यचक्षुः                      | ११            | वस्तुभेदे स्नेहवस्तेः कालनिर्देशः          | ११९           |

| विषयः ।                              | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|---------------|
| अनुवाचने भवितुमिच्छन्भीजनस्य अप-     |               |
| कारितानिर्देशः ...                   | १०४           |
| अयोगातिथोगयुक्तयोर्दोषनिर्देशः       | ,,            |
| अनुवाचनस्येदस्य उत्तमादिमावा-        |               |
| निर्देशः ...                         | ,,            |
| वयोधेटे निरुद्धस्य मावानिर्देशः      | ,,            |
| अनुवाचनस्य ,,                        | १०५           |
| „ सम्यग्योगलक्षणम् ...               | ,,            |
| „ अयोगातिथोगलक्षणम्                  | ,,            |
| निरुद्धानुवाचनयोरतिप्रयोगे दोष-      |               |
| निर्देशः ...                         | ,,            |
| अनुवाचनानङ्गाः ...                   | १०६           |
| आख्यापनानङ्गाः ...                   | ,,            |
| अवस्थानुसारं विविक्ताया कर्तव्यता-   |               |
| निर्देशः ...                         | ,,            |
| अवस्थानुसारं निषिद्धायाः कर्तव्यत्वे |               |
| दृष्टान्तः ...                       | १०७           |
| निरुद्धप्रयोगस्य दिनकालादिनिर्देशः   | ,,            |
| विवेचनादिप्रयोगे दिनावधिनिर्देशः     | १०८           |
| दोषभेदादिरुद्धाङ्गानां साध-          |               |
| निर्देशः ...                         | ११            |
| निरुद्धस्य बहुधात्वनिर्देशः ...      | १०९           |
| „ पक्षाद्यादिनिर्देशः ...            | ,,            |
| „ श्लोकादिमावानिर्देशः               | ,,            |
| आख्यापनानङ्गाः ...                   | ,,            |
| आख्यापनानङ्गाः ...                   | ,,            |
| निरुद्धप्रयोगविधिः ...               | ११०           |
| निरुद्धे श्लोकावस्थानिर्देशः         | १११           |

| विषयः ।                                 | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|
| प्रयोगानन्तरं कर्तव्यनिर्देशः ...       | ११०           |
| सम्यग्वाक्यजितनिरुद्धलक्षणम् ...        | ,,            |
| नृदुकोष्ठे वस्तिप्रयोगविधिः ...         | १११           |
| मावास्वरूपनिर्देशः ...                  | ,,            |
| मुरकोष्ठे वस्तिप्रयोगविधिः ...          | ११२           |
| वस्तिनिवृत्तिविधिः ...                  | ,,            |
| निरुद्धस्य सम्यग्योगलक्षणम् ...         | ,,            |
| दृष्टयुक्तानिरुद्धलक्षणम् ...           | ११३           |
| अयोगातिथोगयोरतिदेशिलक्षणम्              | ,,            |
| उत्तरवस्तेनैवपरिमाणादिनिर्देशः          | ,,            |
| वयोभेदेन रुद्धमावान्निर्देशः ...        | ,,            |
| उत्तरवास्तुप्रयोगविधिः ...              | ११४           |
| स्त्रीणां वस्तिनेवस्य परिमाणादिनिर्देशः | ,,            |
| स्त्रीवालथोर्भूतमार्गे देयज्ञेयप्रमाण-  |               |
| निर्देशः ...                            | ,,            |
| वास्तुमते स्त्रीणामुत्तरवस्तिप्रयोगे    |               |
| कालादिनिर्देशः ...                      | ,,            |
| स्त्रीणां योजि मूत्रमार्गयोः कालानां    |               |
| मूत्रमार्गे च रुद्धमावान्निर्देशः       | ११५           |
| स्त्रीणां वस्तिप्रयोगविधिः ...          | ,,            |
| अप्रत्यागच्छति वक्ष्ये कर्तव्यनिर्देशः  | ,,            |
| योनौ दत्तवस्त्यनागमने कर्तव्यनिर्देशः   | ,,            |
| वस्तिदेशदाहि व स्त्राविधिः ...          | ,,            |
| उत्तरवस्तेनैव परिमाणादिनिर्देशः         | ११६           |
| अतिदेशेन सम्यग्योगलक्षणानिर्देशः        | ,,            |
| अवस्थानुसारं विविधम्                    | ११७           |
| आनन्दसेनमते उत्तरवस्त्यादीनां           |               |
| मावान्निर्देशः                          | ११८           |

| विषयाः ।  | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|
| धूमावध्यायजदोषनिर्देशः ...  | ११६           |
| धूमपानसाध्यरोगाः ...  | ११७           |
| अकालातिपीतयोर्धूमयोर्दोषाः  |               |
| तत्प्रीकारश्च ...   | "             |
| पञ्चविधधूमना नामानि ...   | "             |
| धूमोद्गोरणहारनिर्देशः ...   | ११८           |
| दोषाणामवस्थानविशेषे धूमपान-<br>हारनिर्देशः ...                                | "             |
| धूमपञ्चकानां द्रव्यनिर्देशः ...   | "             |
| धूमपानानर्थाः ...   | "             |
| गण्डवक्त्रवलययोश्चतुर्विधनामनिर्देशः  | ११९           |
| गण्डवक्त्रवलयचतुष्टयसाध्यदोषाणां चतु-<br>विधयोक्तयोर्द्रव्याणां च निर्देशः .. | "             |
| गण्डवक्त्रवलययोर्लक्षणगणनेटः ...  | "             |
| गण्डेषु प्रसृत्यचूर्णस्य कवचार्थं कल्कस्य<br>च माननिर्देशः ...                | १२०           |
| गण्डपक्षध्वजधारणापयोगिवयोनिर्देशः ..  | "             |
| गण्डध्वजारणे कर्तव्यतासङ्ग्रहानिर्देशः ..                                     | "             |
| गण्डध्वजारणस्य समयावधिनिर्देशः ..   | "             |
| क्षतिदेशेन प्रतिधारण-कवचयोर्द्रव्य-<br>निर्देशः ...                           | "             |
| अयोगातिथोगुणयोः गण्डवक्त्रवलययो<br>लक्षणम् ...                                | १२२           |
| गण्डवक्त्रस्य सम्यग्धीगलक्षणम् ...  | "             |
| कृत्रिमगण्डवर्धनोपयोगोदत्तरम् ..  | "             |

| विषयाः ।   | पृष्ठाङ्काः । |
|--|---------------|
| अथ रक्तमोक्षणविधिः ...   | १२१           |
| चतिरक्तस्यैव दोषनिर्देशः ...   | "             |
| विशुद्धरक्तपुरुषस्य लक्षणम् ...                                      | "             |
| रक्तमोक्षणोपयोगिस्थाननिर्देशः  | १२२           |
| रक्तमोक्षणानुपयोगिवयःप्रवृत्तिनिर्देशः ..                            | "             |
| वृत्तमूर्च्छाविधिः ...   | "             |
| मूर्च्छनद्रव्याणां नामपरिमाणादीनां मूर्च्छा-<br>फलस्य च निर्देशः ... | "             |
| कटुतैलमूर्च्छाविधिः ...  | १२३           |
| मूर्च्छनद्रव्याणां नाममात्रादीनां मूर्च्छा-<br>फलस्य च निर्देशः ...  | "             |
| परगुणतैलमूर्च्छाविधिः ...  | "             |
| मूर्च्छनद्रव्याणां नामपरिमाणादि-<br>निर्देशः ...                     | "             |
| तिलतैलमूर्च्छाविधिः ...  | "             |
| मूर्च्छनद्रव्याणां नामनिर्देशादिः ...                                | "             |
| मूर्च्छनद्रव्याणां मात्रायां मूर्च्छाफलस्य च<br>निर्देशः ...         | १२४           |
| पञ्चपल्लादिना मूर्च्छायाः कर्तव्यतादि-<br>निर्देशः ...               | "             |
| पञ्चपल्लावम् ...   | "             |
| अथ गन्धद्रव्यम् ...  | १२५           |
| मपव ..   | "             |
| मतान्तरम् ...  | "             |
| गन्धद्रव्याणां मात्रानिर्देशः ...                                    | १२६           |

सटीकः

# परिभाषा-प्रदीपः ।



प्रथमः खण्डः ।

मङ्गलाचरणम् ।—

नमोऽस्तु नीरद-स्वच्छ वपुषे पीत-वाससे ।

यस्यास्येन्दुसुधां वंशौ पपौ शब्दस्वरूपिणौ ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्तुः परिच्छेदः ।—

कृष्णवक्त्रभसेनस्य तनुजेन वितन्यते ।

श्रीमन्नोविन्दसेनेन परिभाषाप्रदीपकः ॥ २ ॥

ग्रन्थस्य मूलनिर्देशः ।—

पूर्वैर्मुनिभिरादिष्टा स्वे स्वे तन्त्रे क्वचित् क्वचित् ।

परिभाषा मया सा सा समाहृत्य विलिख्यते ॥ ३ ॥

अथ सङ्गृह्यत श्रीमोविन्दसेनः चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्वाधं परिसमीक्षुः  
प्रारम्भे शिष्टपरम्परानुमोदितं मङ्गलमाचरति, नम इति ।—शब्दस्वरूपिणौ शब्दसयो,  
वंश्या' शुषिरवत्त्वेन शब्दपाधान्यात् इति भावः, अथच शब्दस्वरूपिणौ वास्यौ,  
वाग्देवीति यावत्, वंशौ यस्य पीतवाससः, आस्यं मुखमेव, इन्दुः चन्द्रः तस्य  
आस्येन्दोः मुखचन्द्रस्य, सुधाम् अमृतं, पपौ पीतवती, बादनकाले मुखसंग्रीगात्,  
दाणीवक्त्रभत्वाच्चेति भावः, नीरदः मेघः, नवजलधर इति यावत्, स इव स्वच्छं  
लिम्लं, नेतसुभगमिति यावत्, वपुः शरीरं यस्य तस्मै नीरदस्वच्छवपुषे नवजलधर-  
त्रमणीयविषहाय, पीतवाससे पीताम्बराय, तस्मै श्रीकृष्णाय, त्रयः अस्तु तिष्ठतु,  
अनेति शेषः, श्रीकृष्णं नमामि इति फलितायेः ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्ता स्वपरिचयं ददाति, कृष्णेति ।—परिभाषा ग्रन्थसङ्क्षेपार्थम् अवयवाय-  
कनाट्य समुदायार्थं विशिष्टसंज्ञाविशेष इति यावत्, सा प्रदीप इव, दीपवत्  
अव्यक्तादीनां प्रकाशकत्वादिति भावः, परिभाषाप्रदीपः ततः स्वार्थे कः ।  
द्विप्रो यथा प्रभासाहा सर्वगद्विप्रकाशकः, एवं स्रुजिजननद्वारा सर्वशास्त्रोपकारकः



ग्रन्थस्य उपयोगित-निर्देशः ।—

ध्वान्ते पथि चरिष्णूनां यथा दीपः प्रदर्शकः ।

नानाशास्त्रज्ञभिषजा सङ्ग्रहोऽयं तथा भवेत् ॥ ४ ॥

खण्डैश्चतुर्भिरादिष्टः सङ्ग्रहो नातिविस्तरः ।

वैद्याः कुर्वन्त्वत्र यज्ञं व्यवहारार्थमुद्यताः ॥ ५ ॥

ग्रन्थस्य अभिधेयनिर्देशः ।—

अव्यक्तानुक्तलेशोक्त-सन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।

परिभाषाः प्रकथ्यन्ते दीपीभूताः सुनिश्चिताः ॥ ६ ॥

नियमविशेषः परिभाषा इति, तथा च कैयटः,—“अधिकारशब्देन पाराख्यां परिभाषाऽप्युच्यते, अथित् परिभाषारूपः” इति ॥ २३ ॥

अस्य उपयोगितामाह, ध्वान्ते इत्यादि ।—ध्वान्ते अन्वकावाहते । व्यवहारार्थे विवादाय, शिक्षाकर्मणि सङ्ग्रहोऽपूर्वकविविधसन्देहनिरोधनायम् इत्यर्थः, “विज्ञानाऽर्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते । नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति श्रुतः ॥” इति कात्यायनः ; यथा—अर्थविशेषबोधनाय शब्दविशेषप्रयोगार्थमित्यर्थः, उद्यताः कृतोद्यमाः ॥ ३५ ॥

“विद्वांसो विद्वत्सम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते । यस्यादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः कप्रयोजनः ॥ अभिधेयफलज्ञान-विरहक्षितिमोद्यमाः । श्रोतुं स्वल्पमपि ग्रन्थं ज्ञाद्विद्यन्ते हि साधवः ॥” इत्युक्त्या प्रस्तावता प्रवक्तव्यम् अभिधेयादीनामवश्यवाच्या-त्वादादौ अभिधेयादीनाह, अव्यक्तेति ।—अव्यक्तादीनां श्रुत्यां प्रकाशिकाः बोधिकाः अव्यक्तानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः, तत्र अव्यक्तः अस्फुटः, सामान्यलोक्त इत्यर्थः, स च शीतकषायः कार्य इति सामान्यलोक्तौ “षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिङ्गात् शीतफाण्डयोः । आहृत भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥” इत्यादिरूपः, अनुक्तः अनिर्दिष्टः, स च “कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत्” इत्यादिरूपः, लेशोक्तः विस्तरेण वक्तव्यानां बाह्यलक्षणपरिहारार्थं दिग्दर्शनार्थेण अवयवलोक्तिः, स च “सङ्गच्छते गोमयससन्देहे रक्तचन्दनम्” इत्यादिविस्तरोक्तिरूपः, सन्दिग्धार्थः गूढार्थः, सन्देहविषयोभूतार्थ इत्यर्थः, स च वाग्विगत्यादिगणेन शीतलवादिगणेन वा स्नेहः प्रकथ्यः इत्युक्तौ गणोक्तानां लेषां कल्पोक्त क्रायेण वा प्रकथ्यः इति सन्देहे “यदाधिकारणे-प्रोक्तिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधौ । तत्रैव कल्कनिर्युद्धाविध्येते स्नेहवेदिना ॥” इत्यादिसं-सन्देहनिर्देशरूप इति ; केषाञ्चित्कृते परिभाषितमव्यक्तप्रकाशिका ज्ञातव्या, एवञ्च

अथ प्रथमो मानसूत्रं लिख्यते ।—

परिमाणं विना क्वापि नागदाज्जायते फलम् ।

तस्मात् सर्वं यतन्तेऽत्र परिमाणविधौ सदा ॥ ७ ॥

शार्ङ्गधरस्वाह ।—

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।

अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।—

मानापेक्षितमाचार्या भेषजानां प्रकल्पनम् ।

मेनिरे यत्ततो मानमुच्यते पारिभाषिकम् ॥ इति ॥ ९ ॥

तत्तु ( मानं ) मतमेदान्नानाविधं भवति ।

अथ कालिङ्गपरिभाषा ।—

जालान्तरगतैः सूर्यकरैः ध्वंसौ विलोक्यते ।

षड्ध्वनीभिर्मरीचिः स्यात् ताभिः षड्भिष रानजिका ॥ १० ॥

सति सान्द्राशयपराश्रिता परिभाषा यथा—कस्मिंश्चित् योगे किमपि द्रव्यं न लभ्यते चेत् तदभावे किं शास्त्रमिति सन्देहेन्द्रव्याभावे तु तत्तत्त्वं द्रव्यमेव प्रदीयते । मध्यभावे गुणो जीर्णः शाल्यभावे तु षट्पिकः ॥” इत्यादिरूपा ज्ञेया । एवञ्चाव्यक्ताद्यर्थपक्षाजन-मस्याभिधेयसूक्तं भवति, तथा अव्यक्तादिना सह सम्यग्य वाच्यवाचकलक्षणसम्बन्धः, फलञ्च यथाशास्त्रभेदप्रकल्पनेन आतुराणां रुग्णनिवारणमिति ॥ ६ ॥

परिमाणज्ञानस्य उपयोगितामाह, परिमाणमिति ।—नास्त गदो रोगो यस्मात् तस्मात् अगदात् औषधात्, “भेषजोषधभेदज्ञान्यगदो जायुरित्यपि” इत्यमरः ॥ ७ ॥

परिमाणज्ञानस्य उपयोगितायां शार्ङ्गधरवचनमाह, नेति ।—मानेन परिमाणेन । युक्तिः योगः, रोगनिवारणसमर्थः सुष्ठु योग इत्यर्थः । प्रयुज्यते रोगनिवासार्थमिति प्रयोगः औषधं, तत्कार्यार्थं प्रयोगकार्यार्थम् औषधनिर्माणार्थमित्यर्थः । मर्त्य-मानव्यवच्छेदाद्ये प्रयोगकार्यार्थमित्युक्तं, मर्त्य-मानस्य पृथगुक्तेः ॥ ८ ॥

“मानञ्च द्विविधं प्राह कालिङ्गं मागधं तथा । कालिङ्गात् मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः ॥” इति चरकोक्त्या कालिङ्गमागधभेदेन मानस्य द्वैविध्यात् आदौ प्रथमोद्दिष्टं कालिङ्गमानमाह, जालान्तरगतैरित्यादि ।—मानश्चेत्तत् सोऽस्तुतमिति केषाञ्चित्कृतं, तत्र तु न सिद्धिः विशेषप्रमाणमुपलभ्यते, अस्तुते तदुल्लेखोद्देशनात् तथा कालिङ्गपरि-

तिष्ठभी-राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ।

यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ११ ॥

षड्भिश्च रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधामकौ ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्वरणं तन्निगद्यते ॥ १२ ॥

टङ्कः स एव कथितस्तद्वयं कोल उच्यते ।

क्षुद्रो मोटरकश्चैव द्रड्क्षणं तन्निगद्यते ॥ १३ ॥

कोलद्वयश्च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिकः ।

अन्नः पितुः पाणितर्लं किञ्चित् पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ १४ ॥

विडालपटकश्चैव तथा षोडशिका मता ।

करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ १५ ॥

उडुम्बरश्च पर्यायैः कर्ष एष निगद्यते ।

स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १६ ॥

आजायां षड्भिः रक्तिकाभिः सुष्ठुते च पञ्चभिः रक्तिकाभिः माषकनिर्देशादिति सुधीनिर्विभाव्यम् । जालान्तरगतेः गवाक्षविषयनिपतितैः । “ध्वंशो” इत्यत्र “वंशी” इति पाठान्तरम् ; स तु “नसरणः” इति पर्यायान्तराणां च भिन्नद्विती भवति । राजिका “राइ” इति प्रसिद्धम् । सर्षपः श्वेतसर्षपः । “षड्भिश्च रक्तिकाभिः” इत्यत्र “पञ्चभी रक्तिकाभिः” इति पाठान्तरम्, एवञ्च सप्ताष्टनव-दशद्वादशचतुर्दशभिर्गुञ्जाभिरपि क्वचित् क्वचित् माषको दृश्यते, तथा च श्रोकान्तः,—“गुञ्जाभिर्दशभिर्माषचतुर्दशभिरेव च । अन्यत्र षष्ठभिर्माषः षड्भिः क्वचिदुदाहृतः ॥ सप्तभिर्नवभिर्वाऽपि गुञ्जाभिर्माषकोऽपरः । अष्टाभिर्माषकः क्वापि गोड़े द्वादशमित्यथा ॥” इति । हेमधामकौ इति माषकपर्यायौ । “हेमधामकौ” इत्यत्र “हेमधानकौ” इति पाठान्तरम् । स एव आष एव । तद्वयं शाणद्वयम् । “क्षुद्रो मोटरकश्चैव द्रड्क्षणं तत्” इत्यत्र “क्षुद्रको बटकश्चैव द्रड्क्षणः स” इति, तथा “मोटरकः” इत्यत्र “मोरटकः” इति च पाठान्तरद्वयम् । षोडशिका षोडशमाषकपरिमिता । “उडुयोरुलथोर्युलथुर्बुडुलम्” इति केचित् “कवलग्रहः” इत्यत्र “कवलग्रहः” इत्यपि पठन्ति । शुक्तिरष्टमिका इति अर्द्धपलपर्यायः । अष्टमिका अष्टमाषपरिमिता ।

शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिमात्रचतुर्थिका ।  
 प्रकुञ्चः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ १७ ॥  
 पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते ।  
 प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १८ ॥  
 अष्टमानञ्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका ।  
 शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १९ ॥  
 शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽढकम् ।  
 भाजनं कंसपात्रे च चतुःषष्टिपलञ्च तत् ॥ २० ॥  
 चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः ।  
 उन्मानञ्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञितः ॥ २१ ॥  
 द्रोणाभ्यां सूर्पकुम्भी च चतुःषष्टिशरावकः ।  
 सूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी बृहद्द्रोणी च सा स्मृता ॥ २२ ॥  
 द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।  
 चतुःसहस्रपलिका प्रस्थवत्यधिका च सा ॥ २३ ॥  
 पलानां द्विसहस्रञ्च भार एकः प्रकीर्तितः ।  
 तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ २४ ॥  
 माष-टङ्काच्च-विल्वानि कुडवः प्रस्थ आढकम् ।  
 राशिर्द्रोणी खारी चेति यथोत्तरं चतुर्गुणाः ॥ २५ ॥

“मुष्टिमात्रम्” इत्यत्र “मुष्टिरात्रम्” इति पाठान्तरम् । चतुर्थिका चतुष्कर्म इत्यर्थः ।  
 अष्टमानञ्च स ज्ञेयः इत्यत्र सः कुडवः । भाजनादिचतुष्टयमाढकपर्यायः । “कंसपात्रे च”  
 इत्यत्र “कंसपात्रञ्च” इति पाठान्तरम् । “नल्वणः” इत्यत्र “सल्वणः” इति पाठान्तरम् ।  
 “बृहद्द्रोणी” इत्यत्र “वाडो गोणी” इति पाठान्तरम् । प्रस्थवत्यधिका च सा इत्यत्र  
 सा खारी । तुल्येति ।—यदुक्तमन्यत्र “तुला पलशतं तासां विंशतिभार उच्यते ।  
 खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका ॥” इति । सर्वत्रैव इत्युक्त्या सर्वदेशेष्वेव  
 इदं मानं, न केवलं कलिङ्गदेशे, एक-ग्रन्थस्य निश्चयाधिकत्वात् । शार्ङ्गधरेण श्लोकाशो-  
 ऽहं मागधपरिभाषामध्ये पठितः, तेन च तट्टीकाकारेणादमल्लेन “न तु केवलं

द्रव्याद्रंशुष्कद्रव्याणां मानविषये विशेषनिर्देशः ।—

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः ।

द्रवादंशुष्कद्रव्याणां तावन्नानं समं मतम् ॥ २६ ॥

प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्ववादंशोः ।

मानं तथा तुलायाश्च द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ २७ ॥

कुडवमानस्य विशेषनिर्णयः ।—

मृदृक्ष-वेणु-लोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।

विस्तोर्णञ्च तथोच्चञ्च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ २८ ॥

योगानां नामनिर्देशविधिः ।—

यदौषधन्तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।

तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यते तत्र निश्चयः ॥ २९ ॥

[ इति क.लिङ्गपरिभाषा ] ।

अगणदेशे” इति व्याख्या कृता इति ज्ञेयम् । यथोक्तं चतुर्गुणा इति—माषापेक्षया टङ्क टङ्कापेक्षया अक्षः इत्यादिकमेव उत्तरोत्तरं चतुर्गुणा ज्ञेया इत्यर्थः । उक्तञ्चाश्वत्थ—“माषाचतुर्गुणः शणः शणात् कर्षश्चतुर्गुणः । कर्षाचतुर्गुणं बिल्वित्याद्या अपरे मताः ॥” इति ॥ १०—२५ ॥

द्रवाद्रादिद्रव्याणां ग्रहणार्थं परिभाषामाह, गुञ्जादीत्यादि —यावत् कुडवस्थितिः कुडवप्राप्तिः, गुञ्जामारभ्य कुडवपर्यन्तमित्यर्थः । कुडवमित्यत्राद्रंशुष्कद्रव्ययोः सम-परिमाणत्वे महान् मतभेदो विद्यते, स तु अग्रे स्फुटोपदिष्यति । तत् मानम् ॥ २६।२७ ॥

कुडवमितद्रव्यनोल्लेखार्थमुपायविशेषमाह, मृदिति ।—चतुरङ्गुलदोषं चतुरङ्गुल-अक्षश्च मृदादिपात्रं कुडवमितद्रव्याधारमित्यर्थः । लोहादिस्थित्यत्र लोहशब्देन सुवर्णाद्यदिष्वं लोहं बोध्यं, तच्च—स्वर्णरजतस्यारवोक्तं । सोमकलोहात्मकम् । आदिपदेन चात्र चर्मशङ्खदन्तानां ग्रहणम् ॥ २८ ॥

अथ व्यवहारसौकर्याये सिद्धिमेवजानां संज्ञाविधानं यदित्यादि ।—यदौषधन्तु इत्यादि निर्देशः प्रायिकत्वेन तथा क्वाचित्कृत्यादिनामवच्छिन्नादिविषयकः ज्ञातव्यः, रसौषधेषु व्यभिचारदर्शनात् ॥ २९ ॥

अथ मागधपरिभाषा ।—

वसरेणुस्तु विज्ञेयः त्रिंशता परमाणुभिः ।  
 वसरेणुस्तु पर्याय-नाम्ना ध्वंसी निगद्यते ॥ ३० ॥  
 षड्ध्वंसौभिर्मरीचिः स्यात् षण्मरीचस्तु सर्षपः ।  
 षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः ॥ ३१ ॥  
 गुञ्जाभिर्दशभिः प्रोक्तो माषको ब्रह्मणा पुरा ।  
 हेमश्च धामकश्चैव पर्यायस्तस्य कीर्तितः ॥ ३२ ॥  
 चतुर्भिर्मौषकैः शाणः स निष्काष्टक एव च ।  
 धरणशब्दोऽत्र बोध्यः, अन्यत्र शाणपर्यायि लिखितत्वात् ।  
 शाणी द्वौ द्रड्क्षणं विद्यात् कोलं वटकमेव च ॥ ३३ ॥  
 कर्षाङ्गं द्विगुणः कर्षः सुवर्णञ्चाक्षमेव च ।  
 किञ्चिद्दिङ्गलपदकं पिचुः पाणितलं तथा ॥ ३४ ॥  
 उडम्बरं तिन्दुकश्च कवडग्रहमेव च ।  
 हे सुवर्णे पलाङ्गं स्यात् शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ ३५ ॥  
 हे पलाङ्गे पलं मुष्टिः प्रकुक्षश्च चतुर्थिका ।  
 विल्वं षोडशिकाऽऽम्बुश्च हे पले प्रसृतं विदुः ॥ ३६ ॥  
 कुडवः प्रसृताभ्यां स्यादञ्जलिः स निगद्यते ।  
 अष्टमानं शरावाङ्गं तस्य पर्यायमेव च ॥ ३७ ॥

इदानीं प्राकप्रदर्शितोद्देशानुसारेण चरकोक्तं मागधमानमाह, वसरेणुरिति ।—  
 वसरेणुरिति जालान्तरगतसूत्रेकरेयत् सृज्य रजो दृश्यते, तदेव वसरेणुर्विज्ञेयः ।  
 तत्र परमाणुलक्षणञ्चोक्तं यथा—“जालान्तरगते भानौ यत् सृज्यं दृश्यते रजः । तस्य  
 त्रिंशतमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥” इति । “ध्वंसी” इत्यत्र “वंशी” इति पाठे—  
 वंशरश्मिं प्रविष्टं यत् रजस्ततः वंशी, तस्याः त्रिंशता परमाणुभिः या सङ्ख्या सा वंशीति ।  
 “चतुर्भिर्मौषकैः” इत्यादौ “नावैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्वरणं तन्निगद्यते” इति पाठान्तरम् ।  
 कर्षाङ्गेति छेदः । द्विगुणः कर्षाङ्गद्विगुणः, कोलद्वयमित्यर्थः । किञ्चित् तथा  
 दिङ्गलपदकं पृथक् पदद्वयम् । हे सुवर्णे द्वौ कर्षौ । विल्वं षोडशिकाऽऽम्बुश्च इत्यन्ताः

कुडवाभ्यां माणिका स्यात् शरावोऽष्टपलं तथा ।  
 माणिकाभ्यां भवेत् प्रस्थो ज्ञेयः षोडशभिः पलैः ॥ ३८ ॥  
 चतुःप्रस्थैराढकः स्यात् पात्रं कंसञ्च भाजनम् ।  
 अयं भिषाग्निराख्यातश्चतुःषष्टिपलैरिह ॥ ३९ ॥  
 चतुर्भिराढकैर्दोणः कथितः पूर्वसूरिभिः ।  
 घटः कलश उन्मनो नल्लणोऽर्मण एव च ॥ ४० ॥  
 दोणपर्यायनामानि कीर्तितानि भिषग्वरैः ।  
 अयञ्च पलसङ्ख्यातः षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ॥ ४१ ॥  
 दोणाभ्यां सर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ।  
 सर्पाभ्याञ्च भवेद्दोणी सहद्दोणी च सा स्मृता ॥ ४२ ॥  
 दोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।  
 चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ ४३ ॥  
 तुला पलशतं प्रोक्तं भारः स्याद्विशतिस्तुलाः ।  
 पलानां द्विसहस्राणि भारः परिमितो बुधैः ॥ ४४ ॥  
 माष-शाणौ कर्ष-पले कुडवः प्रस्थ आढकः ।  
 दोणो दोणी खारी चेति यथोत्तरं चतुर्गुणाः ॥ ४५ ॥  
 शुष्काद्रवद्रव्याणां मानविधौ विशेषनिर्देशः ।—  
 शुष्कद्रव्येष्विदं मानं द्विगुणञ्च द्रवादृतयोः ।  
 ज्ञातव्यं कुडवादूढं प्रस्थादिश्रुतिमानतः ॥ ४६ ॥

पलपर्यायाः । अयम् आढकः । “नल्लणः” इत्यत्र “लल्लणः” इति पाठान्तरम् ।  
 अयञ्च दोण इत्यर्थः । षट्पञ्चाशच्छतद्वयं षट्पञ्चाशदधिकद्विशतपलानोत्पद्यते । सा  
 खारी । पलशतं सार्द्धहादशशरावा इत्यर्थः । “माषकः शाणित्युक्ते पलं कुडव-  
 प्रस्थकः । रात्रिर्दोणी खारी चेति यथोत्तरं चतुर्गुणाः ॥” इति पाठस्तु प्रामादिकः,  
 यतः प्रस्थश्च चतुर्गुणे कृते आढको भवति, न तु रात्रिः, अथ तु आढकमनुज्ञित्वैव  
 रात्रिपदोपादानात्, किञ्च मानधर्मानमध्ये दोणपर्याये रात्रिपदासङ्गावेऽपि अत्र  
 मद्रुपादानादिति सुषोभिर्द्रष्टव्यम् ॥ ३०—४६ ॥

अतः \* कुडवाद्द्वैमित्युक्तौ शरावस्य द्वैगुण्यं स्यादित्यत आह, प्रस्थादि-  
श्रुतिमानत इति, प्रस्थादिमानमारभ्य इत्यर्थः । कुडवे किं द्वैगुण्यं न ?  
इत्यत आह, कुडवाद्द्वैमिति ।—अयमभिसन्धिः,—कुडवादिति द्विगयोग-  
लक्षणां पञ्चमीं ये वदन्ति, तन्मते कुडवे द्वैगुण्यं नास्तीति, किन्तु कुडवादल-  
व्यवलोपे पञ्चमी, कुडवं व्याप्येत्यर्थः, केचिदत्र एवं व्याचक्षते, तन्मते  
कुडवस्यापि द्वैगुण्यम् । यथा—

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः ।

द्रवादृशुष्कद्रव्येषु तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥

इति वचनात् ।

अस्यार्थः ।—रक्तिकादिमारभ्य कुडवादवाक् तुल्यं मानं कुडवमारभ्य  
द्वैगुण्यम्, एतेन कुडवस्यापि द्वैगुण्यं निश्चलकरेणैव व्याख्यातम् ।

अत एवोक्तम् ।—

सर्पिःखण्डजलचौद्र-तैलचौरासवादिषु ।

अथै पलानि कुडवो नारिकेलि च शस्यते ॥

अनित्या परिभाषेयं यथादर्शनमुच्यते ॥

\* आशङ्कते, अवेति ।—कुडवाद्द्वै कुडवात् परं शरावमानस्य लाभात्  
शरावस्यापि द्वैगुण्यशङ्का, अतस्तान्नरासार्थमाह, प्रस्थादिति ।—एतेन शरावस्य  
द्वैगुण्यभावः सिद्धः । अतैवं ज्ञातव्यं—“शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादि प्रकीर्तितम् ।  
द्विगुणं तत् द्रवेष्विदं सद्यश्चेबोद्धृतेषु च ॥” इति चरकवचने तथा “शुष्काणामिदं  
मानमाद्रद्रवाणाञ्च द्विगुणम्” इति सुश्रुतवचने च गुञ्जादिमानमारभ्य कुडवपर्यन्तानां  
द्रवादृशुष्काणां सममानत्वानुल्लेखात् “ज्ञातव्यं कुडवाद्द्वै” “गुञ्जादिमानमारभ्य—”  
इत्यादि परिभाषा चरकादिभिरनाहता इति । एवञ्च चरकसुश्रुतप्रमाणा-  
सारेण तथा “शुष्कद्रव्येषु यन्मानमाद्रस्य द्विगुणं हि तत् । शुष्कस्य गुणतोऽप्युत्पत्त्यात्  
तस्माददं प्रयोजयेत् ॥” इति वचनानुसारेण च द्रवादृशोः शुष्कापेक्षया सङ्कल्प-  
नीयेत्यात् रक्तिमाषकादौ सर्वत्रैव द्वैगुण्यं याज्यमित्येकेषां सुचिरां सिद्धान्तः ।  
अतः, कुडवस्य द्वैगुण्यद्वैगुण्यविषये बहवो मतभेदा विद्यन्ते, ते तु नास्माभिरत्र  
समाधीयन्ते बहुविवादास्पदत्वात्, सर्वथा ब्रह्मव्यवहारः सम्प्रदायानुसरणीयः ।  
प्रयोगविशेषे कुडवद्वैगुण्यसिद्धौ मतान्तरमाह, सर्पिरित्यादि ।—खण्डः इक्षु-  
विकारः, “खण्ड” इति प्रसिद्धः । श्लोकानेन सर्पिरिति कुडवद्वैगुण्यं



दन्तीष्टते कुङ्कुमाद्ये तैलेऽसावुपयुज्यते ॥

न नारिकेलि खण्डे च न तैले पलमिष्यते ॥

तथा च ।—

कुङ्कुमेऽपि क्वचित् द्वित्वं यथा दन्तीष्टते स्मृतम् । इति ।

अनेनापि निःसन्देहो न प्रतिपाद्यते इति, यतो दन्तीष्टतमात्रे द्वैगुण्य-  
मस्ति, न सर्वत्र, कण्ठोक्त्या क्वचिदिति पाठात् । अतोच्यते, कुङ्कुमे  
माणिकायां तुलायां पलमाने च द्वैगुण्यं जास्तीति । यथा—

कुङ्कुवे माणिकायाञ्च तुलामाने तथैव च ।

पलोहखगते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ॥ इति ।

अत एव कुङ्कुमस्य न द्वैगुण्यम् ; किन्तु निम्नलकरव्याख्या दन्तीष्टते  
भव, नान्यत्रेति सङ्केपः ॥ (क)

शुष्कापिचया आर्द्रस्य द्विगुणग्रहणाविधिः ।—

शुष्कद्रव्ये तु या मात्रा चार्द्रस्य द्विगुणा हि सा ।

शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात् तस्मादङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ ४७ ॥

अस्यापवादमाह ।—

वासा-निम्ब-पटोल-केतकि-बला-कुष्माण्डकेन्दौवरी-

वर्षाभू-कुटजाश्वगन्धसहितास्ताः पृतिगन्धाभृताः ।

परमतसिद्धं प्रदर्श्य स्वमतमाह. अनित्येति ।—अनित्या अनियता, न सार्वत्रि-  
कीत्यर्थः । इयं सर्पिरादिपरिभाषा । यथादर्शनं यथादृष्टम्, आचार्यादि-  
सन्निधौ औषधप्रस्तुतविषये यादृक् प्रत्यक्षोक्तमित्यर्थः ; यथा—यथादर्शनं  
यथाशास्त्रम् । असौ सर्पिरित्यादिपरिभाषा । नेति ।—नारिकेलादौ पलशब्द-  
प्रयोगो न युज्यते इत्यर्थः । “न नारिकेलि खण्डे च तैलेऽपलमिष्यते”  
इति पाठान्तरे—नारिकेलादिद्वये कुङ्कुममाने अपलरूपं द्वैगुण्यं नेष्यते  
इत्यर्थः । (क)

आर्द्रद्रव्यग्रहणे विशेषनियममाह, शुष्केत्यादि ।—सा मात्रा । अङ्गम् इत्यत्र  
आर्द्रापिचया इति शेषः ॥ ४७ ॥

मांसं नागबला सहाचरपूरी हिङ्गुार्द्रके नित्यशः

ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेक्षुजाता गणाः ॥४८॥

“गणाः” इत्यत्र “घनाः” इति वा पाठः ।

अत्र इन्दीवरी शरावरी । पूतिगन्धा प्रसारणी । सहाचरः पीत-  
क्षिणी । इक्षुजाता गुडादयः । गणाः भद्रदार्वादि-सालसारादि-दण्ड-  
मूलीप्रभृतयः । घना इति पाठे—घनाः कठिनाः ।

अन्यच्च ।—

गुडूची कुटजो वासा कुष्माण्डश्च शतावरी ।

अश्वगन्धासहचरौ शतपुष्पा प्रसारणौ ॥

प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं न च कारयेत् ॥४९॥

शार्ङ्गधरमतमेतत् ।

अन्यच्च ।—

वासा-कुटज-कुष्माण्ड-शतपुष्पा-सहाऽमृताः ।

प्रसारण्यश्वगन्धा च नागाख्यातिबलाबलाः ॥

नित्यमार्द्रा प्रयोक्तव्या न तासां द्विगुणो भवेत् ॥ ५० ॥

हस्तिकर्णपलाश-वाय्यालक-गोरक्षतण्डुलाश्चैतत् ।

अथ द्रव्याणामुपयुक्तानुपयुक्तत्वमाह ।—

शुष्कं नवीनं द्रव्यञ्च योज्यं सकलकर्मसु ।

आर्द्रञ्च द्विगुणं विद्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ५१ ॥

द्रवार्द्रयोर्द्विगुणविधायकपरिभाषाया अपवादमाह, वाय्यादि ।—नागबला  
गोरक्षतण्डुला । पुरः गुग्गुलुः । तत्क्षणम् उद्धारक्षणमेवेत्यर्थः । “इक्षुजाता  
गणाः” इति पाठे—इक्षुरसनिघ्नगुडशर्करामख्यण्डिकावितोपलादीनि कठिन-  
द्रव्याण्येत्यर्थः । वासादीनि उद्धृत्यैव ग्राह्याणि, न शुकाणि न वा कृतद्विगुण्यानीति  
निश्चयः, तथाविधानामेवेषां फलोपधायकत्वात् । शतपुष्पा “शकुफा” इति प्रसिद्धम् ।  
आर्द्राः सद्य उद्धृताः, अशुक्ला इति यावत् । सहा सहचरः सङ्गपर्यो वा ।  
नागाख्याः हस्तिकर्णपलाशः, अतिबला गोरक्षतण्डुला, बला अतर्भूतपुष्पभेदेन विविधो  
वाय्यालकः, यद्वा—नागाख्यबला नागबला गोरक्षतण्डुला, अतिबला अतर्भूत-  
पुष्पा पीतपुष्पा बला ॥ ४८—५१ ॥

अन्यच्च ।—

द्रव्यास्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ ।

ऋते घृत-गुड-क्षौद्र-धान्य-कृष्णा-विडङ्गतः ॥ ५२ ॥

प्रसङ्गात् स्नेहादेर्गुणागुणमाह ।—

स्नेहः सिद्धो गुडादिषु गुणहीनोऽद्भुतो भवेत् ।

स्नेहाद्याः पूर्णबोर्ध्याः स्युरा-चतुर्मासतः परम् ॥ ५३ ॥

अद्भुतदृष्टं घृतं पक्वं हीनबोर्ध्यन्तु तद्भवेत् ।

तैले विपर्ययं विद्यात् पक्वेऽपक्वे विशेषतः ॥ ५४ ॥

तैलमत्र तिलभवं, न सर्षपादिस्नेहसामान्यपरम् ।

अन्यच्च ।—

गुणहीनं भवेत् वर्षादृष्टं तद्रूपमौषधम् ।

मासद्वयात् तथा चूर्णं हीनबोर्ध्यत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

भेषजविधौ कौटुम्बिक्य शास्त्रे तदाह—शुष्कमित्यादि । द्रव्याणीत्यादि ।—चान्यं  
अव्याकम् । कृष्णा पिप्पली । घृतादीनां पुराणत्वमेव प्रशस्तमित्यर्थः, पुराणत्वञ्चेतेषां  
संवत्सरादृष्टमेव भवति इति विज्ञेयम् ॥ ५१।५२ ॥

इदानीं सर्वेषामेष्टौषधानां नवतुराणवादिभेदेन गुणगुणावाह, स्नेह इति ।—  
स्नेहः घृततैलवसामञ्जरूपः । सिद्धः पक्वः । गुडादिषु इत्यत्र आदिपदेन खण्डाव-  
लेहादीनां गृहणम् । अद्भुतः वत्सरात् परमित्यर्थः । आ-चतुर्मासतः परं पाकसमाप्ति-  
दिवसमारभ्य चतुर्मासानन्तरम् अर्थात् पञ्चममासमारभ्य वत्सरं यावत् स्नेहादयः  
अमूर्णबोर्ध्यां वर्तन्ते, एतेन पक्वस्नेहादयः चतुर्मासपर्यन्तमप्राप्तबोर्ध्याः द्वादशमासा-  
नन्तरञ्च हीनबोर्ध्या इति विज्ञातव्यम् । केचित्तु परम् अद्भुतं परम्, आ चतुर्मासतः  
चतुर्मासं यावत् इति व्याख्यानयन्ति, “हीनाः स्युर्धृतैलाद्याश्चतुर्मासाधिकमास्तथा”  
इति वक्ष्यमाणवचनान्तरदर्शनात्, तेन षोडश मासान् पूर्णबोर्ध्यांश्चिह्नन्तीति फलितम् ।  
तैले विपर्ययम् इति वैपरीत्यं, पक्वं तैलं विशेषतश्चापक्वं तैलं यावदधिकं पुराणं  
भवेत्, तावद्भीर्ध्याधिकं भवेदित्यर्थः । गुणेति ।—तद्रूपं घातुरसादिविहीनं केवलं  
अनौषधिनिष्पन्नमित्यर्थः । केचित्तु “तद्रूपमिति यादृशं द्रव्यस्वरूपं तादृशमेव तद्रूपं  
कृतं, न तु चूर्णादिकमित्यर्थः ; तथा च—घातुरूपं द्रव्यवर्जं न श्रेष्ठं वत्सरोषितम्”  
इति व्याख्यानयन्ति । हीनबोर्ध्यत्वं भीर्ध्याल्पताया भावं, न तु सर्वथा भीर्ध्यादित्य-

हीनत्वं गुडिकालेही लभेते वत्सरात् परम् ।

हीनाः स्युष्टततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा ॥ ५६ ॥

ओषध्या लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम् ।

पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवा रसाः ॥ ५७ ॥

हीनाः स्युष्टततैलाद्या इति, तैलमत्र कटुतैलं, तन्निष्पादितदृक्पूजा-  
मत्तलादि च ज्ञेयं, नान्यत्—

“अद्वाद्विंशं घृतं पक्वं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ।

तैले विपर्ययं विद्यात् पक्वेऽपक्वे विशेषतः ॥” इति वचनात् ।

रोगविशेषे गणोक्तद्व्यापा हीनोपादेयत्वनिर्देशः ।—

व्याधेरयुक्तं यदुद्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत् ।

अनुक्तमपि युक्तं यदुयोजयेत् तत्र तत् बुधः ॥ ५८ ॥

[ शार्ङ्गधरेण्येवोक्तम् ] ।

निति बोद्धव्यं, भास्करलवणादीनां चूर्णविषयविशेषाणां बहुलपरिमाणेन प्रस्तुतविशि-  
दशनात्, न तु तावत्परिमाणं चूर्णं केनाप्येकेन मासद्वयादुपयोक्तुं शक्यते, अतो  
मासद्वयादृष्टं चूर्णानां क्षिप्तत्वं वीर्यहानिर्भवति, न तु सर्वथा इति सूक्ष्मिर्द्रष्टव्यम् ।  
चतुर्मासाधिकादित्यत्र वर्षादिति शेषः, तेन बोद्धव्यमासादमूलरमित्यर्थः । “चतु-  
र्मासाधिकात्” इत्यत्र “चतुर्मासाधिकाः” इति पाठान्तरम् । अस्मिन् पाठे केचित्  
चतुर्मासयुद्धं वर्षाकालं मन्यन्ते, “वर्षायामुचितः स्नेहः पक्वः हीनत्वमाप्नुयात्”  
इति वचनात् । लघुपाका ओषधयः यवगोधूमादयः, निर्वीर्या निःशेषेण बोध्यहीनाः,  
न तु हीनवीर्याः, “एतेषु यवगोधूम-तिलसमाषा नवा हिताः । रुढाः पुराणाः  
विरसाः न तस्या युषकारिणः ॥” इति वचनात् । “निर्वीर्याः” इत्यत्र “न  
वीर्याः” इति पाठे—न वीर्यवत्यः इत्यर्थः । आसवा इत्यत्र आसवशब्दः सन्धित-  
मादस्योपलक्षणं, तेन आसवारिष्टसुराऽऽरनालादीनां यद्वयं बोध्यम् । धातवः  
सुवर्णदयः, तन्निष्पादितौषधानीत्यर्थः । रसाः पारदाः, रसोपरसचटितौषधा-  
नीत्यर्थः ॥ ५३—५७ ॥

व्याधिविशेषे गणोक्तानाम् औषधीनामयाज्ञात्वे अनुक्तानाञ्च याज्ञात्वे परिभाषामाह,  
व्याधेरिति ।—अयुक्तम् अनुपयोगि ॥ ५८ ॥

अथ प्रशस्तदेशजद्रव्यमाह ।—

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ।

ततस्तान्यौषधानि स्युः प्रशस्तानि क्रियाविधौ ॥ ५८ ॥

अन्येष्वपि प्ररीहन्ति वनेषूपवनेषु च ।

गृह्णीयात्तान्यपि भिषक् वने शैले विशिष्टतः ॥ ६० ॥

अन्येऽप्याहुः ।—

धन्वसाधारणे वाऽपि गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ।

पूर्वाश्रितं वा मतिमानोपधं तद्विचक्षणः ॥ ६१ ॥

अन्यच्च ।—

धन्वसाधारणे देशे सृदावत्तरतः शुची ।

अवैकृतमनाक्रान्तं सवीर्यं ब्राह्ममौषधम् ॥ ६२ ॥

धन्वः देशविशेषः, सरभूमिजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणी देश इति ।

व्याधिविशेषे औषधद्रव्यसङ्गोपयोगि स्थानमाह, आग्नेया इति ।—विन्ध्यशैलाद्या इत्यत्र आदिशब्देन मलयवृक्षपरिधानादौना यद्वचनम् । अयं भाषः,—विन्ध्यादीनामाग्नेयत्वात् सौम्ये व्याधौ वेभ्यो गृहीतान्यौषधानि तथा हिमगिरी, सौम्यत्वादाग्नेये व्याधौ तस्माद्गृहीतानि औषधानि अधिष्ठाकर्तुं क्षाणि स्युरिति ॥ ५८, ६० ॥

विशेषमुक्त्वा खानान्यत औषधवद्व्यप्यनमाह, धन्वेति ।—धन्वेति साधारणी वा । अत्र धन्वशब्दे मरुपर्वतलक्षणेऽपि जाङ्गलवाचकः, जाङ्गलस्यापि मरुप्रायत्वात्, तथा च सुश्रुतः, “आकाशमनः परिवरताम्यक्षगृहविह्वलमायोऽत्यवर्षप्रचक्षणेदवानोदकप्रायः क्षणदाकृच्छातः परिवरताम्यक्षैः स्थिरकाशमरीरमनुष्मप्रायः क्षातपित्तरोगभूयिष्ठश्च जाङ्गलः” इति । यद्वा—धन्वो देशविशेषः, मरुदेश इति यावत्, तत्र यः साधारणः सरभूमिजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणी देशः, तत्र देशमन्ये यत्र कश्चित् मरुजाङ्गलयोः संसृष्टलक्षणी भूभागो विद्यते तत्रेत्यर्थः । साधारणस्तु जाङ्गलानपि मरुदेशस्य लक्षणकः ; तत्र जाङ्गलोऽभिहितः, आनूपस्तु यत्र सुश्रुते “मरुदकानि क्षीणतनवीवर्षादजो मरुधोतानि क्षीणवृक्षमहापर्वतवन्वी मरुदुष्कृमारापणितमनुष्मप्रायः, कक्ष्मातरोगभूयिष्ठः आनूपः” इति ; साधारणा भूमियंवा सु—“मरुदक्षणासमृद्धा भूमिः साधारणा

अत्र निषेधमाह ।—

देवतानयवल्मीक-कूपरथ्याश्मशानजाः ।

अकालतरुमूलोत्था न्यूनाधिकचिरन्तनाः ॥

जलाग्निक्रिमिसङ्कुशा ओषध्यस्तु न सिद्धिदाः ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।—

बल्मीक-कुत्सितानूप-श्मशानोषर-मार्गजाः ।

जन्तु-वह्नि-हिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ ६४ ॥

अथ भूतापसारणः ।—

ओं निवसन्ति हि भूतानि यान्यस्मिन् कानिचित् द्रुमे ।

अपक्रामन्त्वतस्तानि प्रजार्थं पाव्यते द्रुमः ॥ ६५ ॥

ओं वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरोरुपाः ।

ये भूतास्तेऽपसर्पन्तु वृक्षादस्मात् शिवाज्ञया ॥ ६६ ॥

अथोद्धारणमन्त्रः ।—

ओं येन त्वां खनते ब्रह्मा येनेन्द्रो येन केशवः ।

तेनाहं त्वां खनिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना ॥ ६७ ॥

उद्धारणविधिः ।—

भूतादिमुक्तयेऽभ्यर्च्य सार्थं प्रातरुदङ्मुखैः ।

आहूँरुपोषितैर्ग्राह्यं भेषजं कर्मकृद्भवेत् ॥ ६८ ॥

अथ औषधद्रव्याङ्गग्रहणमाह ।—

सारः स्यात् खदिरादीनां निम्बादीनाञ्च वल्कलम् ।

फलन्तु दाडिमादीनां पटोलादेःश्छदस्तथा ॥ ६९ ॥

शार्ङ्गधरस्त्वाह ।—

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्यादौजकादितः ।

सूता । द्रव्याणि यत्र तमेव तद्गुणानि विशेषतः ॥ इति । अवेकतं क्लृप्तत्वं कुलै-  
विबर्णत्वादित्थं विवक्षितम् । अनाकान्तं क्रिमिवह्निहिमादिभिरनभिहतम् ॥ ६१-६२ ॥

औषधद्रव्यसङ्गुदे निषिद्धस्यानादिकमाह, देवतेत्यादि ।—रथ्या मार्गः । अक्षालः-  
तरुमूलोत्थाः अकालसम्भूताः वृक्षान्तरमूलसम्भूताश्च ॥ ६३—६८ ॥

द्रव्याणां केषां क्रिमिहं पाञ्चमित्याह, सार इत्यादि ।—सारः सञ्जा । खदिरादी-

तालीशादेश पत्राणि फल स्यात् त्रिफलादितः ॥ ७० ॥

न्यग्रोधः वटः ।

अन्यच्च ।—

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च ।

तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं क्लृप्तमूलानि क्लृप्तस्यः ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।—

अतिस्थूलजटा याश्च तामां ग्राह्यास्त्वचो भ्रुवम् ।

गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ७२ ॥

निर्देशः श्रूयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः ।

तादृशः संविधातयः शास्त्राभावे प्रमिदितः ॥ ७३ ॥

अस्यार्थः,—यत्र यत्र द्रव्येषु अङ्गानामवयवानां यादृशो निर्देशः श्रूयते, तादृश एव ग्राह्यः । यथा अमृतादिपाचने “अमृतद्रवपटोलं निम्बपत्रम्” इत्यत्र पत्रमेव ग्राह्यं, न वल्कलं, पत्रस्य कणोक्तत्वात् । अङ्गसामान्योक्तौ सूक्ष्मस्य वल्कलेनैव व्यवहार इति गुरवः, “अङ्गोऽयमुक्तो विहितस्तु मूलम्” इति वचनात् ।

नृपादौ औषधप्रयोगे कर्तव्यनिर्देशः ।—

व्याधिग्रथमने पृथ्वं ज्ञापितानि पृथग्जने ।

विस्फारितान्यौषधानि पश्चाद्राजनि योजयेत् ॥ ७४ ॥

पृथग्जने इति जनान्तरे । विस्फारितानि विशेषेण स्फूर्त्तानि ।

तद्वयथा—गोपाल-तापस-शोध-मलाकार-वनेचरान् ।

पृष्ट्वा नामानि जानीयात् भेषजानाञ्च शास्त्रतः ॥ (ख)

नामित्यत्र आदिशब्देन साक्षात्सनादीनां गृह्यम । कृदः पत्राणि । बीजकः पियालः । महान्ति स्थूलानि । अतिस्थूलजटा अतिस्थूलमूलानि । तन्त्रे शास्त्रे ॥ ६८—७२ ॥

अविज्ञातगुणभौषधं भूपादौ न प्रयोज्यमित्याहुः, व्याधीति ।—ज्ञापितानि क्लृप्तमाषणोपालादिभिर्ज्ञापितनामानि, गोपालादिष्वभिधौ नामानि गुणांश्च ज्ञात्वा द्रव्यैः । पृथग्जने प्राकृतमनुष्ये, “विवर्णः पामसो गौचः प्राकृतश्च पृथग्जने” इत्यमरः । विस्फारितानि विशेषेण स्फूर्त्तानि, परोक्षिताभीति यावत् ॥ ७३ ॥

(ख)ः—शास्त्रतः सास्त्रोक्तं लक्षणाजीवकादीनां लक्षणं दृष्ट्वा प्रत्यक्षः ।

विषयभेदे द्रव्यग्रहणम् ।—

शरद्विचिनकमार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।

विरक्तवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ ७५ ॥

अथ ऋतुभेदे द्रव्याङ्गग्रहणमाह ।—

मूलानि शिशिरे घोषे पत्रं वर्षावसन्तयोः ।

त्वक्कन्दौ शरदि चौरं यथर्तुं कुसुमं फलम् ॥

हेमन्ते सारमौषध्या गृह्णीयात् कुशलो भिषक् ॥ ७६ ॥

अर्थः ।—यथर्तुं यस्मिन् ऋतो यत् यत् पुष्पं फलञ्च भवति, तस्मिन्नेव तत्तद्ग्राह्यमित्यर्थः ।

अथ सामान्योक्तौ द्रव्यग्रहणमाह ।—

पात्रोक्तौ चापि सृत्पात्रसुत्पले नीलसुत्पलम् ।

शक्तद्रसे गोमयरसचन्दने रक्तचन्दनम् ॥ ७७ ॥

सिद्धार्थः मषपे ग्राह्यो लवणे सैन्धवं मतम् ।

सूत्रे गोसूत्रमादेयं विशेषो यच्च नेरितः ॥ ७८ ॥

पयः-सर्पिःप्रयोगेषु गव्यमेव प्रशस्यते ।

स्त्रियश्चतुष्पदे ग्राह्याः पुमांसो विहगेषु च ॥ ७९ ॥

मांसपट्टविविधः ।—

जाङ्गलानां वयःस्थानां चर्मरोमनखादिकम् ।

हित्वा ग्राह्यं पूतमांसं सास्थिकं खण्डशः कृतम् ॥ ८० ॥

कर्मविशेषे औषधसङ्ग्रहस्य कालविशेषमाह, शरद्वीति ।—अखिलकर्मांशे ह्रीपनपाचनशोधनशसनक्षान्नाद्यर्थमित्यर्थः । सरसम् पात्रम् ॥ ७५-७६ ॥

लेशेनोक्ते द्रव्ये तत्प्रकाशार्थं विशेषपरिभाषामाह, पात्रोक्ताविति ।—सिद्धार्थः शक्तवर्षपः । विशेषो यच्च नेरितः यच्च तासलोद्वादिपात्रं औषधैर्वादिषणं महिषाजादीनां मूत्रमिति विशेषो न उक्तः इत्यर्थः । स्त्रियश्चतुष्पदे ग्राह्याः इति—आयिकं मार्गमित्याद्युक्तौ पुंसेवादिकं विहाय सेव्यादिकं ग्राह्यमित्यर्थः ॥ ७७—७९ ॥

मांसे गृहीतव्ये कीटशानां पशूनां पक्षिणाञ्च मांसं कीटग्विधिना ग्राह्यमित्याह, जाङ्गलानामिति ।—जाङ्गलानां जाङ्गलदेशजानां, वयःस्थानां तदणानाम् ॥ ८० ॥



घृतेलघोः क्वागयइणविधिः ।—

पक्तव्यमाजमांसञ्च विधिना घृतेलघोः ।

ह्रित्वा स्त्रीं पुनश्चापि क्लीवं तत्रापि टापयेत् ॥ ८१ ॥

बलिनञ्च वयःस्थञ्च सुवीर्यञ्च सुदेहिनम् ।

न हृदञ्च न बालञ्च अवीर्यं स्रावशोणितम् ॥ ८२ ॥

एतद्धेतुगर्भविशेषणम् । (ग) असन्विस्तु क्वान्दसः । अथवा न वीर्यम-  
वीर्यम्, अस्यायं नञ्, तेनास्यगुक्तम् ; अत एव काशीराज्याभिप्रायेण  
नपुंसकस्य विधिना सूचितमेव, शरीरारम्भकचादस्यवीर्यत्वं वीर्यमस्येव  
इत्यर्थः । अतः स्रावशोणितायाः क्वाग्यस्वपुपयोगित्वम्, अर्थादस्राव-  
शोणिताया ग्राह्यत्वम् इत्यर्थः । स्त्रीपक्षे वा बन्ध्याच्छाग्या असाव-  
शोणितत्वमस्येव, तस्मात् बन्ध्या क्वाग्यपि योज्या इति नपुंसकाभावा-  
दनुशासनम् ।

चतुष्टये शृगालस्य विगर्भनिर्देशः ।—

शृगालवर्हिणोः पाके पुमांसं तत्र टापयेत् ।

मयूरो जम्बुकी क्वागौ वीर्यहीना स्वभावतः ॥ ८३ ॥

क्वागयइणं हृदवेद्यमनमाहः ।—

काशीराजमतेनेव क्वागमेव नपुंसकम् ।

अभावादप्रतीक्षादा हृदवेद्योपदेशनः ॥

बन्ध्या क्वागौ विपक्तया न तु शास्त्रमतं चरेत् ॥ ८४ ॥

स्त्रियश्चतुष्टये याज्ञा इत्यस्यापवादमाह, पक्तयमिति ।—विधिना यथाशास्त्रम् ॥  
सुवीर्ये पूर्णवीर्यम् । सुदेहिनं परितुष्टदेहं, न तु क्षयमित्यर्थः । स्रावशोणितं  
स्रवरक्तम् । “स्रावशोणितम्” इत्यत्र “स्रवशोणितम्” इति पाठो युक्तः । “अवीर्यं  
क्वावशोणितम्” इत्यत्र “न स्रवहोतशोणितम्” इति पाठान्तरम् ॥ ८१, ८२ ॥

स्त्रियश्चतुष्टये याज्ञा इत्यस्याः परिभाषायाः शृगाले व्यभिचारं प्रदर्शयति,  
जम्बालेत्यादि ।—बर्हिं मयूरः । जम्बुकी शृगाली ॥ ८३ ॥

नपुंसकक्वागयइणविषये हृदवेद्यमनमाह, काशीराजिति ।—अप्रतीक्षात् प्रवृत्त-  
व्याधौ नपुंसकान्वेषणाय कालविलम्बं कर्तुमशक्यत्वात् इत्यर्थः ॥ ८४ ॥

(ग) एतदिति ।—एतत् बलिनमित्यादिकं, हेतुगर्भविशेषणं, वीर्यादिरुदये  
हेतुयुक्त्यां प्रवृत्तिहेतुकत्वादिति भावः ।

अभावात् इति नपुंसकस्य अज्ञाभात् । अथवा नपुंसकस्य वीर्या-  
भावात् वीर्यमस्ति न वेति काकइत्तवत् । अप्रतीक्षाद्वा, शास्त्रमिति  
शासनम् आज्ञा, काशीराजमतेनैवेत्यादिरूपेण । केचित्तु कृत्रिमनपुंसक-  
मपि ददति, तदसत् ; स तु प्रकृत्या च पुरुष एव । ननु बन्ध्याया  
नपुंसकस्य च कृगस्य अपत्यजनकत्वं नास्ति, तत्कथमपत्यकामिनः  
प्रवर्तन्ते कृगलादिवृतादिषु कदाचित् क्रियासिद्धेरभावः स्यात् ?  
अतश्चिन्त्यम् ।

मृदादिग्रहणे नियमनिर्देशः ।—

स्त्रीणां मूलं गवां तीक्ष्णं न तु पुंसां विधीयते ।

पित्तात्मिकाः स्त्रियो गस्मात् सौम्यास्तु पुरुषा मताः ॥ ८५ ॥

क्षीरसूत्रपुरौषाणि जीर्णाहारे तु संहरेत् ॥ ८६ ॥

अथाहुक्तो द्रव्यग्रहणम् ।—

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ।

भागेऽनुक्ते तु मास्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते तु सृज्यम् ॥

द्रवेऽनुक्ते जलं विद्यात् सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ ८७ ॥

अथाभावे द्रव्यग्रहणम् ।—

मधु यत्र न विद्येत तत्र जीर्णं गुडो मतः ।

पुरातनगुडाभावे रौद्रे यामचतुष्टयम् ॥ ८८ ॥

संशुभ्य नूतनं ग्राह्यं पुरातनगुडैः षण्णा ।

क्षीराभावे भवेन्नाहो रसो मासूर एव वा ॥ ८९ ॥

सिताऽभावे च खण्डः स्यात् शाल्यभावे च षष्टकः ।

असम्भवे च द्राक्षाया गान्धारीफलमिष्यते ॥ ९० ॥

पथोगे पुनातोऽगोर्मुख्यः अपग्रस्ततादिकमाह, स्त्रोषामिषादि ।—क्षीर-  
कफात्मिकाः । जीर्णाहार पमाने ॥ ८५, ८६ ॥

अनुक्तस्थले तत्प्राप्तये । विशेष्यरभाषामाह, काले इत्यादि ।—जटा मूलम्  
द्रवेऽनुक्ते सेहादिप्राप्तये । स्वामजायादिद्रवपदार्थानुल्लेखे ॥ ८७ ॥

द्रव्यविशेषाभावे तत्स्थाने यात्रं द्रव्यान्तरमाह, मज्जति ।—जीर्णः

न भवेद्वाडिमो यत्र वृक्षास्त तत्र दापयेत् ।

सौराष्ट्रवृद्धभावे च ग्राह्या पङ्क्त्य पर्यटौ ॥ ८१ ॥

नतं तगरमूलं स्यादभावे शिङ्खलीजटा ।

प्रयोगे यत्र लौह. स्यादभावे तन्मूलं विदुः ॥ ८२ ॥

सर्षपः शुक्लवर्णी यः स हि सिद्धार्थ उच्यते ।

तत्र सिद्धार्थकाभावे सामान्यः सर्षपो मतः ॥ ८३ ॥

चविकागजपिप्पल्योः पिप्पलीमूलमेव च ।

अभावे पिप्पलीमूलं हस्तिपिप्पलीचव्ययोः ॥ ८४ ॥

पाठान्तरमेतत् न पुनस्तदीषः ।

अभावे पृश्निपर्ण्याश्च सिंहपुच्छी विधीयते ।

सिंहपुच्छी शालपर्णी ।

नित्यं मुञ्जातकाभावे तालमस्तकमिष्यते ॥ ८५ ॥

तालसदृशवृक्षः, स च देशान्तरे ख्यातः, “माञ्जफलम्” इति केचित् ।

कुङ्कुमस्याप्यभावेऽपि निशा ग्राह्या भिषग्वरेः ।

मुक्ताऽभावे शङ्खचूर्णं वज्राभावे वराटिका ॥ ८६ ॥

वस्त्राधिकः पुरातनः । सौद्रो रसः सुदृगृषः । वृक्षास्तं महाद्रुमं तिलिङ्गीकं वा । पङ्क्त्य पर्यटौ कर्दमे शुक्ले तदुपरिस्थः पर्यटीवत् पदार्थविशेषः, “पर्यटौ चटा” इति प्रसिद्धः, सौराष्ट्रवृद्धभावे स्फटिकारिकामपि व्यवहरन्ति वृद्धाः । शिङ्खलीजटा “शिङ्खलीकोप” इति ख्यातः जलजोद्भिदविशेषः । तन्मूलं लौहमूलं, मण्डुरमित्यर्थः । मुञ्जातकम् “शोतरापक्षिकः फलविशेषः” इति शिवदासः, “पुष्पशाकभेदः” इति राजवल्लभः । तालमस्तकं तालवृक्षस्य मस्तकस्य-मज्जा “तालमाषि” इति वङ्गे प्रसिद्धम् । यथा मुञ्जातकाभावे तालमस्तकस्य ग्राह्यत्वम्, एवं युञ्जातकाभावेऽपि ; तथा हि चक्रसङ्ग्रहे अपञ्जारचिक्षिप्सायां “नित्यं युञ्जातकाभावे तालमस्तकमिष्यते” । अस्य व्याख्यायां “युञ्जातम् शोतरापक्षिकः कन्दः, तदभावे तालमस्तकम्” इति शिवदासः । चक्र-शिवदासयोर्विदितदर्शनात् एवं प्रतीतिर्भवति यत् मुञ्जातकं युञ्जातकमभिप्रेत्येव श्रेष्ठं, पाठभेदमात्रमिति । निशा हरिद्रा । “शङ्खचूर्णम्” इत्यत्र “शुक्तिचूर्णम्” इति

कर्कटशृङ्गाभावे मायास्य चेष्टते बुधैः ।  
 धान्यकाभावतो दद्यात् शतपुष्पां भिषग्वरः ॥ ८७ ॥  
 वाराहीकन्दकाभावे चर्मकारालुको मतः ।  
 मूर्वाऽभावे त्वचो ग्राह्या जिह्विन्या ब्रुवते सदा ॥ ८८ ॥  
 अभावात् पौष्करे मूले कुष्ठं सर्वत्र गृह्यते ।  
 सामुद्रं सैन्धवाभावे विडं वा गृह्यते बुधैः ॥ ८९ ॥  
 कुसुम्बुरु न विद्येत यत्र तत्र च धान्यकम् ।  
 पुष्पाभावे फलञ्चामं विड्मेढे विल्वः फलम् ॥ ९० ॥  
 भस्मातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ।  
 भस्माताभावतश्चित्रं नलश्वेत्तीरभावतः ॥ ९०१ ॥  
 मद्याभावे च शिण्डाकी शुक्ताभावे च काञ्जिकम् ।

पाठान्तरम् । वद्धाभावे हीरकाभावे । “बले वैज्ञानमिष्यते” इत्यपि पाठो  
 दृश्यते । मायास्य कालन्दकलं. “तरमृज” इति भावा । “कर्कटशृङ्गाभावे  
 मायास्यभीजमिष्यते” इति पाठान्तरम् । शतपुष्पा “गुल्फा” इति ख्यातम् ।  
 वाराहीकन्दः चर्मकारालुकः, वराहलोमवत् लोमवान् कन्दविशेषः, यदङ्गी  
 चक्रपाणिना नारसिङ्गं वाराहीकन्दपरिचये—“वाराहीकन्दमस्तु चर्मकारा-  
 लुको मतः । पांशुने घृष्टिगन्दाख्यो वराहलोमवानिव ॥” इति । तादृशलक्षण-  
 वाराहीकन्दकाभावे केवलचर्मकारालुको ग्राह्यः, उक्तस्य शिवदासेन—  
 “वाराहीकन्दस्य दुर्लभतया चर्मकारालुकमेव गौडीये वाराहीकन्दसंज्ञया गृह्यते”  
 इति । जिह्विन्वा मन्त्रिहायाः । पौष्करं मूत्रं काश्लीरुदेयजः पद्मपत्राकार-  
 यवविशिष्टः जलजः कन्दविशेषः । सामुद्रं “करकच” इति प्रसिद्धम् ।  
 आमम् अपक्वम् । विड्मेढे अतोमारोगे । “विड्मेढे विल्वः फलम्” इत्यत्र  
 “शुक्ताभावे तु काञ्जिकम्” इति पाठान्तरम् । विड्मेढे विल्वः फलम् इत्यनेन  
 विड्मेढादन्यत्र विल्वो मूलं ग्राह्यमित्यर्थादायातम् । शिण्डाकी—“शिण्डाकी  
 राजिकायुक्तेः स्यान्मृजद्वयद्रवे । सप्तवारनेवाऽपि ग्राह्यापिष्टकसंयुतेः ॥” इति  
 लक्षणलक्षितः सन्धानविशेषः । शुक्ल—“कन्दमूलफलादीनि ससेहलवणानि च ।  
 यत्र द्रवेऽभिष्यन्ते तच्छक्तमभिधीयते ॥” इति कृत्यमात्रलक्षणलक्षितम् ।

यथाह्वाभावतो विद्याच्चर्यं तस्याप्यभावतः ॥ १०२ ॥  
 मूलं मौषलिकं देयमभावे कुटजस्य च ।  
 राज्ञाऽभावे च वन्दाकं जीराभावे च धान्यकम् १०३ ॥  
 तुम्बुरूषामभावेऽपि शालिधान्यं प्रकीर्तितम् ।  
 रसाञ्जनस्य चाप्राप्ती दार्दीकायं प्रयोजयेत् ॥ १०४ ॥  
 कर्पूरस्याप्यभावेऽपि सुगन्धं मुस्तमिष्यते ।  
 कस्तूरीणामभावे तु ग्राह्या गन्धशटी बुधैः ॥ १०५ ॥  
 अभावे कोकिलाक्षस्य गीतुरवौजमिष्यते ।  
 ऋद्धभावे बला ग्राह्या वृद्धभावे महाबला ॥ १०६ ॥  
 मेदाभावे चाश्वगन्धा महाभेदे च शारिवा ।  
 जीवकर्षभकाभावे गुडूची-वश्लोचने ॥ १०७ ॥  
 काकोली-युगलाभावे निक्षिपेच्च शतावरीम् ।  
 चित्रकाभावतो दन्ती-क्षारः शिखरिजोऽथवा ॥ १०८ ॥  
 अभावे धन्वयासस्य प्रचेप्या तु दुरालभा ।  
 अहिंसाया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्तितः ॥ १०९ ॥  
 लक्षणाया अभावे तु नीलकण्ठ-शिखा मैता ।  
 वकुलाभावतो देयं कल्लारोत्पल-पङ्कजम् ॥ ११० ॥

“शुक्ताभावे च काञ्चिकम्” इत्यत्र “हाग्यभावे नपुंसकम्” इति पाठान्तरम् ।  
 यथाह्वेयादितः कुटजस्येत्यन्तेन एकेव परिभाषा, यष्टिमधुनः अभावे  
 एव चव्यादिकं देयमित्यर्थः । मौषलिकं मूलं तालमूलीमूलम् । यदा—  
 यथाह्वाभावात् चर्यं, चर्यस्यापि अभावे यष्टिमधुप्रतिनिधित्वे मौषलिकं  
 मूलं, तथा कुटजस्याभावेऽपि मौषलं मूलं देयमित्यर्थः । “मूलं मौषलिकम्”  
 इत्यत्र “मूलमौषलिकम्” इति पाठान्तरे—मौषलिकं मूलं पिप्पलीमूलम् । तुम्बुरुः  
 स्नानमप्यातवणिग्द्रव्यविशेषः । दार्दीकायं दारुहरिद्राकायम् । कोकिलाक्षः  
 “कुलेखाङ्गा” इति वक्त्रे “तालमख्ना” इति पश्चिमप्रदेशे च ख्यातम् । शारिवा  
 जनन्तमूलम् । शिखरिजः अपामार्गमूलजः, क्षार इति श्रेयः । धन्वयासो दुरा-  
 लभाभेदः । अहिंसा “केलेखाङ्गा” इति ख्यातम् । नीलकण्ठशिखा नीलकण्ठाख्य-

नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते ।  
जातौपुष्पं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्र दीयते ॥ १११ ॥  
अर्कपर्णादि-पयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ।  
पौष्कराभावतः कुष्ठं तथा लाङ्गल्यभावतः ॥ ११२ ॥  
श्लोण्येयकस्याभावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ।  
कुङ्कुमाभावतो दद्यात् कुसुम्भकुसुमं नवम् ॥ ११३ ॥  
श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देयमिष्यते ।  
अभावे त्वेतयोर्वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥ ११४ ॥  
रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ।  
मुस्ता चातिविषाऽभावे शिवाऽभावे शिवा मता ॥ ११५ ॥  
अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेशरमिष्यते ।  
मेदाजौवककाकीली-ऋद्धिदन्हेऽपि चासति ॥ ११६ ॥  
वरी विदार्यश्चगन्धा वाराही च क्रमात् क्षिपेत् ।  
सुवर्णाभावतः स्वर्ण-माक्षिकं प्रक्षिपेत् बुधः ॥ ११७ ॥  
श्वेतं तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधैः रजतवत् ध्रुवम् ।  
माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात् स्वर्णगौरिकम् ॥ ११८ ॥  
सुवर्णमथवा रौप्यं सृतं यत्र न लभ्यते ।

पद्मस्य शिखा अयभागाः, सा च मञ्जरीवद्व्यतिता भवतीति ज्ञातव्यम् । जातौपुष्पं  
“जयित्री” इति ख्यातम् । अर्कपर्णादिपुष्पस्यः अर्कपर्णः अर्कवृक्षः, “अर्काद्विषुकास्फोट-  
गणश्चपर्विष्मोरणाः । तन्दारस्यार्कपर्णे” इत्यमरः । तदादिपुष्पस्यः अर्कादिचौरस्य,  
आदिपदेन सुजादीना यद्वचनम् । तदस्यः अर्कमूलरसः । लाङ्गली “ईशलाङ्गला”  
इति ख्यातं, तदभावे कुष्ठम् । श्लोण्येयकं यन्त्रिपर्णं, “नैऋत्या” इति  
ख्यातम् । गदः कुष्ठम् । श्रीखण्डचन्दनं रक्तचन्दनम् । शिवाऽभावे शिवा  
मता हरीतक्यभावे कामसकी देशा । नागपुष्पस्य नागकेशरपुष्पस्य ।  
मेदादीना दन्ते यस्मै, “दन्तं परः शूयमाणशब्दः प्रत्येकानामिष्यन्त्यते”  
इति नियमात् दन्तशब्दः मेदादीना प्रत्येकानान्वेतव्यः । वरी प्रतावरी । वाराही  
वाराहीकन्दः । “श्वेतम् माक्षिकं ज्ञेयं बुधैः रजतवत् ध्रुवम्” इति ।

तत्र कान्तेन कर्माणि भिषक् कुर्याद्विचक्षणः ॥ ११८ ॥  
 कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ।  
 मल्यण्डभावतो दद्युर्भिषजः सितशर्कराम् ॥ १२० ॥  
 अमन्त्रे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ।  
 सौराष्ट्रभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १२१ ॥  
 तालौश-पत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते ।  
 मान्येभावे तु तालौशं कण्टकारोजटाऽथवा ॥ १२२ ॥  
 रुचकाभावतो दद्यात् लवणं पांशुपूर्वकम् ।  
 अभावे मधुयथ्यास्तु घातकीञ्च प्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥  
 अम्लवेतसकाभावे चुक्र दातव्यमिष्यते ।  
 द्वाक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरीफलम् ॥ १२४ ॥  
 तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ।  
 लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १२५ ॥  
 कस्तूर्यभावे कक्कोलं जेषणीयं विटुर्बुधाः ।  
 कक्कोलस्याप्यभावे तु जातौपुष्यं प्रदीयते ॥ १२६ ॥  
 सुगन्धं सुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ।  
 कर्पूराभावतो देयं ग्रान्थपत्रं विशेषतः ॥  
 यदि न स्यात् दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः ॥ १२७ ॥  
 यत्र यद्व्यमप्राप्तं भिषजं परपूर्वतः ।  
 ग्राह्यं तद्गुणमाभ्यात् तु न तत्र कापि दूषणम् ॥ १२८ ॥  
 अग्न्याग्निं यानौह रसायनादौ योगं च वस्तूनि च कीर्तितानि ।  
 तेषामन्त्राग्नेन च वृद्धवैद्य-प्रसिद्धतस्तानि हरन्ति वैद्याः ॥ १२९ ॥

रौप्याभावात् रौप्यमाक्षिकं देयं गुणमाभ्यात् । कान्तेन कान्तलोहम् । रुचकं  
 ओषधौषधौ लक्षणम् । लवणं पाशुपूर्वकं पाशुलवणं, “पांडा लवण” इति ख्यातम् ।  
 चुक्र इच्छाम् । काश्मरीफलं शम्भरीफलम् । नखस्य नखोन्मासकगतद्रव्यम् ।  
 ग्रान्थपत्रं “गुणदेवा” इति ख्यातम् ॥ ८८—१२९ ॥

अजमोदाप्रयोगे विज्ञेयविधिः ।—

अन्तःसम्भार्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यमानिका ।

बहिःसम्भार्जने सेव विज्ञातव्याऽजमोदिका ॥ १३० ॥

प्रतिनिधियुक्तस्य विशेषस्वरूपनिर्देशः ।—

योगे यदप्रधानं स्यात् तस्य प्रतिनिधिर्मतः ।

यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ १३१ ॥

इति परिभाषाप्रदीपे प्रथमः खण्डः ।

## द्वितीयः खण्डः ।

पञ्चविधकषायमाह ।—

स्त्रो रसः स्वरसः प्रोक्तः कल्को दृषदि पेषितः ।

कथितस्तु शृतः शीतः शर्वरीमुषितो मतः ॥ १ ॥

क्षिप्तोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते ।

पञ्चैताश्च समुद्दिष्टाः कषायाणां प्रकल्पनाः ॥

गुरवः स्युर्यथापूर्वं लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २ ॥

प्रयोगभेदे अजमोदाशब्देन याज्ञद्रव्यविशेषमाह, अन्तरिति ।—अन्तःसम्भार्जने कोष्ठशोधनार्थमाभ्यन्तरिकप्रयोगे इत्यर्थः । बहिःसम्भार्जने त्वगादिदृष्टिशोधनाय बाह्यप्रयोगे इत्यर्थः ॥ १३०।१३१ ॥

इति परिभाषाप्रदीपे प्रथमखण्डव्याख्या समाप्ता ।

अथ स्वरसादीनां द्रव्याधोनत्वात् भेषजद्रव्याणां च मानापेक्षितत्वात् आदौ मान-  
सूत्रं ततो द्रव्यगुणविधानानि च प्रदर्श्य प्रयोगार्थे पञ्चविधं कषायमाह, स्त्र  
इति ।—स्त्रः क्षिप्तः । दृषदि पाषाणे । कथितः अग्नौ पकः । शर्वरीमुषितः  
क्षिप्तोषितः । मृदितः मृदितः ॥ १ । २ ॥



विश्रामिवेण शीतफाण्टयोर्लक्षणमुक्तं, तद्यथा ।—

षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलात् शीतफाण्टयोः ।

आप्तुतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥ ३ ॥

अन्येऽप्याहुः ।—

अथ स्वरसकल्कौ तु सृतश्च शीतफाण्टकौ ।

ज्ञेयाः कप्रायाः पञ्चेते गुरवः पूर्वपूर्वतः ॥ ४ ॥

स्वरसमाह ।—

सद्यः क्षुषार्द्रद्रव्यस्य वस्त्रयन्त्रादिपीडनात् ।

यो रसस्त्वभिनिर्याति स्वरसः स प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।—

आहत्य तत्क्षणाकृष्टात् क्षुषात् द्रव्यात् समुद्धरेत् ।

वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु स्वरसो रस उच्यते ॥ ६ ॥

स्वरसभावे तदनुकल्पविधिः ।—

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे ।

वारिण्यष्टगुणे सार्धं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।—

आदाय शुष्कं द्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे ।

जलेऽष्टगुणिते सार्धं पादशिष्टन्तु षट्छते ॥ ८ ॥

मतान्तरम् ।—

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं तद्विगुणे जले ।

अहोरात्रं स्थितं तस्मात् भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ९ ॥

शीतफाण्टयोः जलभेषजयोः परिमाणमाह, षड्भिरिति ।—रसाख्यायां स्वरसा-  
भावात् तदनुकल्पे, पञ्चदशं भेषजपलद्वयं, अतःपले जले आप्तुतं कर्तव्यमिति शेषः ३  
लक्षणादयम्—“द्विपलं भेषजस्याव दत्त्वा जलचतुःपले । सटयेत्तेन निर्यासो यः स्यात्  
स्वरस उच्यते ॥” इति ॥ ३ । ४ ॥

स्वरसस्य लक्षणमाह, सद्य इति ।—सद्यः तत्क्षणम्, उद्धारण्य एवेत्यर्थः ॥ ५ । ६ ॥

स्वरसप्राप्तौ तदनुकल्पमाह, शुष्केत्यादि ।—रसः स्वरस इत्यर्थः ॥ ७—९ ॥

अस्य पानमात्रमाह ।—

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् ।

निशाधितञ्चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिवेत् ॥ १० ॥

स्वरसभेदात् पुटपाकविधिमाह ।—

पुटे पक्वस्य द्रव्यस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।

अतोऽयं पुटपाकः स्यात् विधानं तस्य कथ्यते ॥ ११ ॥

द्रव्यमापोषितं जम्बू-वटपत्रादिसम्पटे ।

वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा ॥ १२ ॥

मृत्लेपं द्वाङ्गुलं कुर्यादथवाऽङ्गुलिमात्रकम् ।

दहेत् पुटान्तरादग्नौ यावत्लेपस्य रक्तता ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।—

पुटपक्वस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।

अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यारुणवर्णता ।

लेपश्च द्वाङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाऽङ्गुलिमात्रकम् ॥

काश्मरीवटजम्बादि-पत्रैर्बेष्टनमुत्तमम् ॥ १५ ॥

स्वरसस्य मात्रामाह, स्वरसस्येति ।—गुरुत्वात् गुरुपाकित्वात् ; स्वरसस्य गुरुत्वाच्च “गुरुवः स्त्रुयवापूर्वं लवणः सूर्ययोत्तरम्” इत्यनेन प्रागेव प्रदर्शितम् । निशाधितं रात्रिरप्युषितं, “दिपलं भेषजस्यात्र” तथा “कुडुवं चूर्णितं द्रव्यम्” इत्येताभ्यां प्रागुक्तम् अनुकल्पभूतम् । शीतकषायेण सह अस्यायं भेदो ज्ञातव्यः,—शीतकषाये भेषजस्य पक्वमानता जलस्य च घटपलता, अत्र तु जलभेषजयोर्मानवैपरीत्यमिति । अग्निबिद्ध “शुक्लद्रव्यमुपादाय” इत्यादिना प्रदर्शितानुकल्पव्यपनित्यर्थः । “निःशेषित-श्चापि विद्धम्” इति पाठान्तरमसाधु । रसं स्वरसानुकल्पमित्यर्थः ॥ १० ॥

पुटपक्वस्वरसमाह, पुटे इति ।—पुटे पात्रविशेषे । आपोषितं कुट्टितम् । लेपस्य उपरिच्छिन्नलेपस्य । “मात्रेयम्” इत्यत्र “पाकोऽयम्” इति पाठान्तरं साधु । काश्मरी गाभारी ॥ ११—१५ ॥

कल्कमाह ।—

द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् ।

तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभिधीयते ॥

आवापस्त्वथ प्रक्षेपस्तस्य पर्याय उच्यते ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।—

द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।

प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥ १७ ॥

कल्काखण्डनाथे मध्वादीनां मानानिर्देशः ।—

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।

सितां गुडं समं दद्यात् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ १८ ॥

कल्कस्येषज्ञेदाश्चूर्णमाह ।—

अत्यन्तशुष्कं यद्व्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।

चूर्णं तच्च रजः क्षोदस्तस्य पर्याय उच्यते ॥ १९ ॥

अथ काथमाह शार्ङ्गधरः ।—

पानीयं षोडशगुणं क्षुप्ते द्रव्यपले क्षिपेत् ।

सृत्यात्रे काथयेत् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ २० ॥

कल्कमाह, द्रव्येति ।—“द्रव्यमाद्रं” इत्यत्र “द्रव्यमात्रम्” इति पाठान्तरं न स्मर्यम् ॥ १६।१७ ॥

अथ सेवनीये कल्के मध्वादीनां मानमाह. कल्के इति ।—कल्के “यतः पिष्टं रसपिष्टानां कल्कः स परिकीर्तितः” इत्यादिदृष्टे, तथा कल्कभेदचूर्णेऽपीत्यर्थः, खेदव्ये इति यावत्, द्विगुणमात्रया कल्कस्य कर्ष-मानत्वात् कर्षद्वयमात्रया इत्यर्थः, “कर्षचूर्णस्य कल्कस्य गुडिहानाच्च सर्वशः । द्रव्यगुणं स खेदयः पातव्यश्चतुर्दशः ॥” इति परिभाषाबलात् मध्वादिना खेदव्ये कल्के इति बोध्यम् । सितां गुडं समं दद्यात् इति “चूर्णं चूर्णसमी ज्ञेयः क्षोदके द्विगुणो गुडः” इति परिभाषाबलात् । द्रवाः मध्वादिव्यत्यतिरिक्ताः काथस्वरसादिद्रवाः इत्यर्थः, अस्मिन् पक्षे कल्के पातव्ये कल्के इत्यर्थः, “पातव्यश्चतुर्दशः” इति शास्त्रात् इति ॥ १८।१९ ॥

काथविधिसाह, पानीयमिति ।—षोडशगुणं काथ्यपलापैचया इत्यर्थः, “कर्षादौ

तज्जलं पाययेद्वोमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ।

शृतः काथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।—

द्रव्यादापोथितात्तोये वज्जिना परिपाचितात् ।

निःसृतो यो रसः पूतः स शृतः समुदाहृतः ॥

काथः कषायो निर्यूहः पर्यायस्तस्य कौत्तितः ॥ २२ ॥

पानौघकाशस्य पानकाल-मावानिर्देशः ।—

आहाररसपाके च सञ्जाते द्विपलोन्मितम् ।

लुङ्गवैद्योपदेशेन पिबेत् काथं सुपाचितम् ॥ २३ ॥

काथे दोषभेदात् प्रलेप्यसितामधुनोः मावानिर्देशः ।—

काथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुरष्टकषोडशैः ।

वातपित्तकफातङ्गे विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ २४ ॥

तु पलं यावत् दद्यात् षोडशिकं जलम्” इति नियमात्, एतत् उत्तमवलानल-  
पुरुषापेक्षया बोद्धव्यम्, “उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे । जलस्य  
पलार्धेन स्नेहकायौषधेषु च ॥” इति नियमात् । वत्समानव्यवहारिणी मात्रा तु  
वर्षसन्मिता ज्ञेया, “दशरत्निकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वयम् । दत्त्वाऽन्धः षोडशगुणं  
याज्यां पादावशेषितम् ॥” इति वचनात् । अष्टमांशावशेषितमिति अत्यन्तकठिन-  
द्रव्यापेक्षया बोद्धव्यम् ॥ २०।२१ ॥

काथविधौ मतान्तरमाह, द्रव्यादित्यादि ।—अत्र जलभेषजयोर्मानेऽनुज्ञेऽपि  
दशरत्निकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वयम् । दत्त्वाऽन्धः षोडशगुणं याज्या पादाक-  
शेषितम् ॥” इति “द्रव्यनापोषितं कृत्वा कषादिकपञ्चान्ततः । जले षोडशिके  
षट्का काथः स्यात् पादशेषितः ॥” इति वा परिभाषानुसारेण तयोर्मानं  
याज्यामिति ॥ २२ ॥

पानौघकाशस्य पानकालं मात्राञ्च निर्दिशति, आहारैति ।—आहाररसपाके  
च सञ्जाते प्रभाते इत्यर्थः ॥ २३ ॥

काथे प्रलेप्यमाणयोः शर्करामधुनोर्मानमाह, काथे इति ।—अथमर्थः,—काथे  
शर्करामक्षेपे क्षर्तव्ये वातजनितरोगे काप्यात् चतुर्थांशा, पित्तरोगे षट्त्मांशा, कफरोगे

शीतमाह ।—

क्षुसं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्जलपलैः पूतम् ।  
शर्वरीमुषितं सम्यक् ज्ञेयः शीतकषायकः ॥ २५ ॥

अवान्तरभेदात् तण्डुलोदकमाह ।—

तण्डुलं कणशः कृत्वा पलं ग्राह्यं हि तण्डुलात् ।  
चतुर्गुं जलं देयं तण्डुलोदककर्मणि ॥ २६ ॥  
अन्येऽप्याहुः ।—

शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ॥ २७ ॥

अथ फाष्टमाह ।—

क्षुसे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ।  
पात्रे चतुःपलमितं ततस्तु स्रावयेज्जलम् ॥  
सोऽयं पूतो द्रवः फाष्टो भिषग्भिरभिधीयते ॥ २८ ॥

प्रसङ्गादुष्णोदकमाह ।—

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेन वा ।  
अथवा कथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ २९ ॥

अथ षोडशांश शर्करा दातव्या, मधु च वाते षोडशांशं, पित्ते अष्टमांशं, कफे च चतुरंशं प्रलेप्यन् इति ॥ २४ ॥

शीतकषायविधिमाह, क्षुसमिति ।—शर्वरीमुषितं निशापर्युषितम् ॥ २५ ॥

शीतकषायभेदं तण्डुलोदकमाह, तण्डुलमिति ।—चतुर्गुणमित्यत्र अष्टगुणमपि ज्ञातान्तरं देयम् ; तथा च—“कण्डितं तण्डुलपलं जले त्वष्टगुणे क्षिपेत् । धौलं कृत्वा जलं तच्च तण्डुलोदकमुच्यते ॥ शर्भिततण्डुलपानीयं ज्ञेयं ज्योष्ठाऽम्बुसंज्ञितम् ॥” इति । शीतेति ।—शीतकषायमानेन “क्षुसं द्रव्यपलम्” इत्याद्युक्तपरिमाणेनेत्यर्थः ॥ २६।२७ ॥

फाष्टकषायमाह, क्षुसे इति ।—पात्रे सत्पात्रे भेषजपलं चतुःपले उष्णजले श्लिष्य प्रमादं मर्दयित्वा पातय्य च दण्डद्वयं त्रयं वा स्थाप्य, ततो वस्त्रेण विस्मर्य याज्यम् इति ॥ २८ ॥

अष्टोदकविधिमाह, अष्टमेनेति ।—कथनेनैव किञ्चित् पाकेनेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

काथादेरवान्तरभेदाद्भेदादिकमाह ।—

काथादेयत् पुनः पाकात् घनत्वं सा रसक्रिया ।

अवलेहश्च लेहश्च प्राश इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥

वटकादिनामभेदे कारणनिर्देशः ।—

वटको मोदकः पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथा वटी ।

वटिका गुड़िका चेति संज्ञाऽवान्तरभेदतः ॥ ३१ ॥

मात्राच्छायाऽऽतपच्छेद-वासविश्लेषपेषणैः ।

मन्यपौडनसंयोग-जलकालवलावलैः ॥ ३२ ॥

द्रव्ये गुणान्तराधानं विशिष्टं क्रियते यतः ।

तेन मोदकचूर्णादि-वटकाश्च यथाश्रुति ॥ ३३ ॥

अस्यार्थः ।—मात्रादयश्चैते द्रव्याणां विशिष्टगुणान्तराधानं जनयन्ति मात्रादिभेदात् । एकमपि द्रव्यं मात्रादिभेदेन विकारविशेषं नाश्रयति ; यथा रसशास्त्रे त्रिविक्रमः, नवायसलौहं शोथपाण्ड्वादीन् हन्ति, त्रिकत्रयादिलौहञ्च ग्रहण्यादिकमित्यनयोर्द्रव्याणां भेदाभावः, किन्त्वनयोः लौहस्य केवलमात्राभेदत्वेनैव गुणभेदः, एवं सर्वत्र छायाऽऽतपादिष्वपि ज्ञेयम् । केषाञ्चित् भेषजद्रव्याणामवान्तरभेदविरहेऽपि छायाशोषत्वेन च गुणभेद इति गुरवः ।

लेहादिकमाह, काथादेरिति ।—काथादेरित्यत्र चादिपदेन खरसानुकल्पादीनां यङ्गणम् । पुनः पाकात् वस्त्रपूतस्य काथस्य पुनः चणौ कथनात् । “प्राश इत्युच्यते बुधैः” इत्यत्र “तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता” इति पाठान्तरम् ॥ ३० ॥

भेषजानां वटकमोदकादिनामकरणे हेतुं निर्दिशति, वटक इत्यादि ।—मात्रा रक्तिकादिपरिमाणम् । छायाऽऽतपः छायायामातपे वा शुष्कीकरणम् । केदः क्तेदनम्, अणुशः स्थूलशो वा क्तेदनमित्यर्थः । वासः कर्पूरादिभिः सुगन्धीकरणम् । विश्लेषः पृथक्करणं, द्रव्यविश्लेषस्य वर्जनमित्यर्थः । पेषणम् अल्पशो बहुशो वा इत्यर्थः । कालः प्रभातादिः । बलं द्रव्याणां वीर्यबलम् । अथाश्रुति यथाशास्त्रम् ॥ ३१—३३ ॥

अथ द्रव्याणां मात्राविधिर्लिख्यते ।—

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं बलं वयः ।

प्रकृतिं देशदीर्घौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥

यतो मन्दानला ऋत्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ।

अतस्तु मात्रा तदुद्योग्या प्रोच्यते शुद्धसम्भता ॥ ३५ ॥

अन्येऽप्याहुः ।—

नाल्पं हन्यौषधं व्याधिं यथाऽल्पांशु महानलम् ।

दोषवच्चातिमात्रं स्यात् शस्यमत्युदकं यथा ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।—

मात्रया हीनया द्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत् ।

द्रव्याणामतिबाहुल्यात् व्यापत् सञ्जायते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।—

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।

व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥

उत्तमबलानलादौ मात्राविशेषनिर्देशः ।—

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ।

जघन्यस्य पलाद्वैन स्नेहकाथ्यौषधेषु च ॥ ३९ ॥

अस्यार्थः ।—उत्तमस्य प्रबलाग्निबलपुरुषस्य, न पुनर्युगविशेषजातस्य पुरुषस्य, क्षितौ कलाविव शास्त्रप्रचारात्, सत्ययुगादौ व्याध्यभावात्, उत्तमादिशब्दानां युगादीनामनभिधानाच्च । पलमत्र सोश्रुतमिति गुरवः, चरकार्द्रपलोन्मानं, चरके दशरक्तिकैरिति सोश्रुतपलं चरकार्द्रपलम् । त्रिभिरक्षैरिति चरकस्य त्रिभिस्तोलेः । पलाद्वैनेति चरके कर्षैकेण, युग-

मात्राविधिमुपदिशति, स्थितिरिति ।—कालं नित्यगम् आवाञ्छिकञ्च । प्रकृतिं वातललादिभ्यम् । देशः शीतप्रधान उष्णप्रधानो वा । “शुद्धसम्भता” इत्यत्र “सर्वसम्भता” इति पाठान्तरम् । द्रव्यं वीर्यवत् स्त्रव्यवीर्यं वा, कोष्ठं मृदुकोष्ठं क्रूरकोष्ठं वा ॥ ३४—३८ ॥

मात्राया अवस्थानाभावेऽपि स्त्रव्यशुद्धीनां दिव्यान्प्रदर्शनायेनाह—उत्तमस्येति ॥ ३९ ॥

प्रभावात् जवैया एव सर्वे, अत एव जवन्या माता सर्वेषां दातव्या । किञ्च  
“कर्षशूणेश कल्कय गुडिकानाञ्च सर्वशः” इति जवन्यमातामाश्रित्य  
चक्रइतेन स्वसङ्ग्रहे लिखितमिति दिक् । काव्यमित्यर्हणार्थं यत्, काव्य-  
मर्हति इति काव्यं, तेषु स्नेहकाव्योपधेषु ; अथवा काव्योपधेषु चेति  
काव्यमोपधं यैः क्षीरजलकाञ्जिकादिभिः ; अतस्तानि क्षीरादीनि भक्षणी-  
यानि । अतो भक्षणमत्रेति गुरवः प्राहुः ।

गुडमोदकादीना व्यवहारिकी माता ।—

सार्द्धं पलं पलञ्चाद्धं विदध्यात् गुडखण्डयोः ।

श्रेष्ठमध्यमहोनेषु मात्रेयं मुनिभिः कृता ॥

अत्र स्यात् सौम्यतं पञ्च-रक्तिमाषात्मकं पलम् ॥ ४० ॥

मोदकं वटकं लेहं कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।

कर्षद्वयं पलं वाऽपि देयं कोष्ठाग्नपेक्षया ॥ ४१ ॥

श्रेष्ठमध्यमहोनेषु द्वादशाष्टचतुष्टयैः ।

माषकैर्गुग्गुलोर्मात्रां कोष्ठं वीच्यावचारयेत् ॥ ४२ ॥

धातुरसादीना व्यवहारिकी माता ।—

गुञ्जामात्रं रसं देवि ! हेमजीर्णञ्च भक्षयेत् ।

तारं त्रिगुञ्जकं प्रोक्तं रविजीर्णं द्विगुञ्जकम् ॥ ४३ ॥

लोहाभ्रनागवङ्गानां खर्परस्य शिलाजतोः ।

षड्गुञ्जाप्रमिता माता मलोपरसमाषकम् ॥ ४४ ॥

गुडादीनां माताविधिं निर्दिशति, सार्द्धमित्यादि ।—पलञ्चाद्धं पलमर्द्ध-  
पलस्येत्यर्थः ॥ ४०—४२ ॥

धातुरसादीनां व्यवहारिकीं मातां निर्दिशति, गुञ्जेत्यादि ।—हेमजीर्णञ्च  
जीर्णसुवर्णमपि गुञ्जामात्रमित्यर्थः । तारं रोप्यम् । रविजीर्णं तास्रमस्य ।  
नागः नीसक्तम् । मलोपरसमाषकं मलस्य लोहमलस्य मण्डूरस्य, उपरशानां  
गन्धकादीनाञ्च, माषकमानम् । उपरसास्तु—“गन्धकं वज्रवेक्रान्तं वज्राक्षं तालकं  
शिला । खर्परं शिखितुल्यञ्च विमलं हेममाषिकम् ॥ काशीशं कालपाषाणं  
वराटाञ्जनद्विजुलम् । गैरिकं शङ्खभूलागं टङ्गनञ्च शिलानत ॥ एते चोपरमाः



कांस्थपित्तलयोर्मानं भक्षयेत् ताम्रजीर्णवत् ।

यवमात्रं विषं देवि ! गुञ्जामात्रन्तु कुष्ठिने ॥ ४५ ॥

वज्रं यवद्वयमितं तालकं यवसप्तकम् ।

ततो बुद्ध्वा भिषक् दद्यात् प्रायो मात्रेति कौर्त्तिता ॥ ४६ ॥

कालिङ्गात् मागधस्य श्रेष्ठलोतिः ।—

यस्माच्च द्विविधं मानं कालिङ्गं मागधं तथा ।

कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमेवं मानविदो विदुः ॥ ४७ ॥

कालिङ्गं सौश्रुतं मानं पञ्चरक्तिकमानतः ।

दशरक्तिकमानन्तु मागधं चरकेरितम् ॥

तयोर्मागधमानन्तु प्रशंसन्ति भिषग्वराः ॥ ४८ ॥

कालिङ्गमागधयोः प्रयोगस्थलनिर्देशः ।—

कालिङ्गं शुद्धलोहादि-द्रव्यस्य कल्पने मतम् ।

कषायानुवासनादि-द्रव्यादाने तु मागधम् ॥ ४९ ॥

पाचनादौ जलपरिमाणमाह ।—

कर्षादौ तु पलं यावत् दद्यात् षोडशिकं जलम् ।

ततस्तु कुडवं यावत् तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ५० ॥

चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वं यावत् प्रस्थादिकं भवेत् ।

क्वाथ्यद्रव्यपले कुर्यात् प्रस्थाद्वं पाटशेषितम् ॥ ५१ ॥

अस्यार्थः ।—क्वाथ्यद्रव्यपले इति ।—प्रबलाग्निबलपुरुषापेक्षया क्वाथ्य-  
द्रव्यस्य पलं ग्राह्यं, तत्साधनार्थं प्रस्थाद्वं जलं दत्त्वा पादावशिष्टं

श्रेष्ठाः ॥” इति । यवमात्रमिति—विषन्तु सर्वरोगेषु यवमात्रमा कुष्ठरोगिणे  
तु गुञ्जामात्रया दातव्यमित्यर्थः ॥ ४३—४८ ॥

कीटशे भेषजे कालिङ्गमानानुसारेण कीटशे वा मागधमानानुसारेण द्रव्यं  
यास्यं तन्निर्देष्टमाह, कालिङ्गमिति ।—“शुद्धलोहादिद्रव्यस्य” इत्यत्र “गुडलोहादि-  
द्रव्यस्य” इति “शुद्धलोहादिद्रव्यस्य” इति च पाठान्तरद्वयम् ॥ ४९ ॥

पानीयकाषस्य चेहादिसाधनार्थंकाषस्य च जलपरिमाणमाह, कर्षादाविति ।—  
षोडशिकं षोडशगुणम् ॥ ५०-५१ ॥

कायं, प्रस्थाईत्वत् जलमष्टगुणं शरावद्वयं पादशेषेण पल-  
चतुष्टयं ग्राह्यमित्यर्थः । \*

मृदादिकाथमेदे जलपरिमाणनिर्देशः ।—

मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं भवेत् ।

कठिनात् कठिनं यच्च दद्यात् षोडशिकं जलम् ॥ ५२ ॥

मृदादिद्रव्यमृदाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः ।

मध्यसोभयभागित्वादिकृन्त्यष्टगुणं जलम् ॥ ५३ ॥

मृदादि इति ।—मृदु आर्द्रद्रव्यम्, आदिशब्दात् कठिनातिकठिनयो-  
र्ब्रह्मणम् ; एतेषां मिलितानां द्रव्याणाम् अनुक्तजलपरिमाणानां  
पाचनादिसाधनविधौ जलपरिमाणं मध्यस्य मध्यस्थितस्य मृद्वतिकठिनयोः  
कठिनस्य जलपरिमाणं प्राक् यदुक्तम् अष्टगुणं तदेव दत्त्वा पक्तव्यम्,  
उभयभागित्वादिति—उभयोर्मृद्वतिकठिनयोः कठिनस्य जलपरिमाणं  
प्राक् यदुक्तं, मध्य एव भागोक्तत्वादिति जलमष्टगुणमुचितमेव इति श्रवः ।

जलपरिमाणप्रसङ्गतः पाचनानां द्रव्यपरिमाणमाह ।—

दशरक्तिकमानेन मृद्हीत्वा तोलकद्वयम् ।

दत्त्वाऽन्धः षोडशगुणं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥

इमां मात्रां प्रकुर्वन्ति भिषजः पाचनेषु च ॥ ५४ ॥

“चतुर्गुणमतश्चोद्वै यावत् प्रस्थादिकं भवेत्” इत्यस्याः परिभाषायाः द्रव्यविशेषे  
जनेकान्तिकत्वमाह, मृदाविति ।—कठिनात् कठिनं चन्दनखुदिरकाष्ठादिकम् ।  
अथस्य मृदुकठिनातिकठिनद्रव्याणां परस्परमेलनेन मध्यमगुणवतः इत्यर्थः, उभय-  
भागित्वात् मृद्वतिकठिनोभयपञ्चगुणभाक्त्वात् इत्यर्थः ॥ ५२।५३ ॥

ज्वरादौ पानीयकायस्य व्यवहारिकौ मात्रामाह, दशेति ।—सुगमम् ॥ ५४ ॥

\* प्रस्थाईत्वात् जलमष्टगुणमिति द्रव्यैगुणत्वात् षोडशगुणमित्यर्थः, अथवा  
प्रक्षमानस्य अष्टगुणत्वे शरावस्यैव प्राप्तेः शरावद्वयमित्यसङ्गतेः ; एवञ्च “ज्वरादौ तु  
सल्लं यावत् दद्यात् षोडशिकं जलम्” इति परिभाषाऽपि सङ्गच्छते इति ।

अथ यवाग्वादिसाधने जलभेषजयोः परिमाणमाह ।—

काथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुप्तं अपयित्वा जलाढके ।

पादावशेषे तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पयेत् ॥

यूषांश्च रसकांश्चैव कल्पेनानेन साधयेत् ॥ ५५ ॥

पानोद्यसाधने जलभेषजयोः माननिर्देशः ।—

यदसु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ।

कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽभसि ।

अर्द्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥ ५६ ॥

कल्कासाध्यां पेयमाह केशरीटीकाकारः ।—

कर्षाद्वै वा कणाशुण्ठयोः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ।

विनोय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ॥ ५७ ॥

अस्यार्थः,—कर्षाद्वैमित्यादि ।—कणाशुण्ठी च तयोर्मिलित्वा कर्षाद्वै  
गृहीत्वा कल्कद्रव्यस्य च तण्डुलादेः पलं विनोय, विनीयेति पाठे—नीत्वा  
इत्यर्थः, विलीयेति पाठे—कल्कोक्तयेत्यर्थः । वारिप्रस्थेनेति एकत्वमवि-  
वक्षितम्, अग्नयापेक्षया अधिकेनेति यावत्, तेन प्रस्थद्वये जले साधयित्वा  
अर्द्धशृतैन वारिप्रस्थेन युक्त्या किञ्चिन्नूनेन अधिकेन वा प्रबलाग्नि-  
पुरुषापेक्षया इत्यन्वापरां कल्कासाध्यां यवागं पाचयेत् सुसिद्धां कुर्यादित्यर्थः ।  
एवमन्यत्रापि पेयादिसाधने प्रबलाग्निपुरुषादौ युक्त्या प्रचुरतरं सलिलं  
कल्कद्रव्यं वा ग्राह्यम् । साधनक्रममाह—कणाशुण्ठयोः कर्षाद्वै गृहीत्वा  
काथ्यद्रव्यस्य पलञ्च प्रस्थद्वयेऽभसि अर्द्धशृतीकृत्य वारिप्रस्थं वस्त्रेण क्लान-  
यित्वा नातिसान्द्रां नातिस्निग्धां यवागूं साधयेत् । कणाशुण्ठयोः प्रत्येकं

यवाग्वादिका जलभेषजयोः परिमाणमाह, काथ्येति ।—अञ्जलिं कुडवम ।  
आढके द्रव्यैगुण्यात् षोडशशरावे । एषा तु परिभाषा प्रबलाग्निपुरुषापेक्षया  
ज्ञातव्या । मतान्तरे तु पलमानं काथ्यं जलाढके पक्वा अर्द्धावशेषः करणीयः, तथा च  
काथ्यद्रव्यपलं क्षुप्तं अपयित्वा जलाढके । अर्द्धशृतैन तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पना ॥  
इति । प्रास्थिके द्रव्यैगुण्यात् शरावस्तुष्टये । मात्रा चेष्टा अल्पाग्निपुरुषापेक्षया  
ज्ञातव्या, सप्तममध्यमाग्निपुरुषापेक्षया तु मात्रैश्चा युक्त्या वर्धयितव्या इति ॥ ५५—५७ ॥

कर्षाद्धं कृत्वा पृथग्गुणोऽयमिति कश्चित् । ननु यथेवं भेषजं काथः सामान्याविश्वमपि, तत् किमर्थं—“कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिके-  
ऽम्भसि” इति षडङ्गपरिभाषा ? अत आह, षडङ्गपरिभाषायां प्राथ  
इति प्राचुर्येण, प्रचुरस्थिते षडङ्गपरिभाषैव पेयादिसम्भता पेयादिषु  
कीर्तिता, पेयादिषु मन्यते इति यावत् । अयमर्थः,—प्रायेण षडङ्गपरि-  
भाषैव व्यवहार इति षडङ्गपरिभाषोक्ता । प्रबलाग्निपुरुषे तु बहुभोक्तरि  
स्तोकतोयेन यवागूर्न सिध्यति, युक्त्या काथप्राबल्यं काथप्राबल्ये भेषज-  
प्राबल्यं कैशककृत्वा पतितमिति सर्वमवदातम् । निश्चलकरेण तु पलमत्र  
सौश्रुतमित्यधेयमिति व्याख्यातम् । अत्र नारायणदासेन व्याख्यातं—  
कणाशुक्लाः कर्षाद्धं वेति तोष्णद्रव्योपलक्षणं, कल्काद्रव्यस्य वा पलमिति  
मृदुद्रव्योपलक्षणं, मृदुकठिनयोर्युक्त्या कर्षद्वयमिति । अपरामिति ये  
यवाग्वादयः षडङ्गपरिभाषया सिद्धाः न तदर्थेयं परिभाषा, किन्तु  
तदितरार्थेयमित्यर्थः । आकृतिपूर्वमत्र ( पूर्वत्र ? ) कर्षमात्रं द्रव्यसुक्तम्, अत्र  
तु कर्षाधिकमपि, पूर्वत्र तु प्रस्थमात्रं जलसुक्तम्, अत्र प्रबलाग्निबलपुरुषार्थं  
बहुयवागूसाधने प्रस्थाधिकमपि गृह्यते, कश्चित् प्रस्थान्येऽपि यूषः साध्यते ।  
पूर्वम् अर्द्धशतजलसुक्तम्, अत्र तु कश्चित् पादावशिष्टमपि । मांसरसे  
साध्यमाने पानयोग्यावशिष्टे इति युक्तिशब्दार्थः, तदेतद्व्युक्तं भवति—  
“यवागूः षड्गुणे तोये प्रस्थे प्रस्थाधिकेऽपि वा । रसेन पाके मांसस्य  
सुसिध्यति हि यावता ॥ अष्टशिष्टो भवेत् यूषः कश्चित् पादावशिष्टतः ।  
अष्टादशगुणे तोये यूषः शार्ङ्गधरेरितः ॥” इति । गुरवत्वाद्गुः,—परिभाषेयं  
पानोपसाधनविषयिणो, चक्रपाणिद्वयेन पानोपसाधनप्रकरणे षडङ्ग-  
पानोपसाधनपानीयानन्तरं पिप्पलीपानीयं लिखितं, कणाशुक्लाः कर्षाद्धं  
वारिप्रस्थेन साध्यम् । ननु अत्र कल्काद्रव्यस्य वा पलमिति कथसुक्तम् ? अत  
आह नारायणान्तरङ्गः,—मृदुद्रव्यस्य उपलक्षणमिति । यद्यपि पिप्पलीये  
पानीये आनुषङ्गिकत्वात् युक्त्याऽपरान् यूषान् पेयादीन् वा धात्वपेक्षया  
साधयेत्, तथाऽपि तण्डुलादीनां पलं कल्कीकृत्य वारिप्रस्थेनार्द्धशतेन  
साध्यम्, अतः षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्भतेत्युक्ता पञ्चादेषा  
लिखिता, पेयादयस्तु षडङ्गपरिभाषया सर्वत्र साधनीयाः ; प्राज्ञःशब्दस्तु  
प्रचुरस्थिते षडङ्गपरिभाषा सम्भता, तदितरार्थेयमिति ।

यवागूसाधने तण्डुलप्रकारमाह ।—

यवागूसुचिताङ्गताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ॥ ५८ ॥

उचिततण्डुलाच्चतुर्भागैकभागमानं क्षुद्रिततण्डुलमाहुः, तैः  
कृतां यवागूं वदेदित्यर्थः, “याउ” इति लोके ।

अन्नादिसाधने जलपरिमाणमाह ।—

अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी च चतुर्गुणे ।

मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽभ्यसि ॥ ५९ ॥

मण्डादिलक्षणमाह ।—

सिक्थकैः रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता ।

यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।—

यवाग्वाः यवागूविशेषकशरायाश्च पाकविधिः ।—

यवागूः षड्गुणे तोये सिद्धा स्यात् कशरा धना ।

तण्डुलैर्मङ्गमाषेभ्य तिलैर्वा साधिता द्वि सा ॥ ६१ ॥

• यवागूपाके तण्डुलमानमाह, यवागूमिति ।—उचितात् अथस्तात्, तद्विवक्षे  
यावत् भोक्तुं शक्यात्, तावन्मानादित्यर्थः । “तद्विवक्षीयवृत्तुत्वापेक्षया” इति  
शिवदासः ॥ ५८ ॥

अन्नादिपाकाय जलपरिमाणमाह, अयमिति ।—पञ्चगुणे इति तण्डुलापेक्षया  
पञ्चगुणे जले इत्यर्थः । यवागूः षड्गुणेऽभ्यसि इति यवागूशब्देनाव पेया विवक्षिता,  
पेयायाः पृथक् जलमानानुक्तात्वात्, यवागूशब्दस्य च सामान्यतः मण्डादिवश-  
तोऽपेक्षतात् । केचित् विलेयादीनां जलमानैः सह अन्नस्य पञ्चगुणं जलं  
संयोजनीयमिति वदन्ति व्यवहरन्ति च तथैव, एवञ्च विलेपी अन्नगुणे, मण्ड-  
लकोनविंशतिगुणे, पेया एकादशगुणे साध्या इति ॥ ५९ ॥

मण्डादीनां लक्षणमाह, सिक्थकैरिति ।—सुगमम् ॥ ६० ॥

यवागूं तथा यवागूविशेषकशरायाश्च, यवागूरिति ।—यवागूः षड्गुणे तोये सिद्धा  
कृतम्येति शेषः ; या चेत् तण्डुलादिभिः षड्गुणे च तोये साधिता, तत्रा-  
हना च स्यात्, तथा सा यवागूः कशरा, पेया इति शेषः । “कशरा तिलप्रतण्डुल-

यवागुण्याः ।—

यवागुणाहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ ६२ ॥

विलेप्याः पाकविधिर्गुणाश्च ।—

विलेपो च घना सिक्थः सिद्धा नोरे चतुर्गुणे ।

विलेपो तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ ६३ ॥

पेयायुषयोः पाकविधिः ।—

द्रवाधिका घना सिक्था चतुर्दशगुणे जले ।

सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूपः किञ्चिद्धनः स्मृतः ॥ ६४ ॥

पेयायुषयोगुणाः ।—

पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुमुष्टिदा ।

यूपो बल्यः स्मृतः कण्ठो लघुपाकः कफापहः ॥ ६५ ॥

भक्तस्य पाकविधिः गुणश्च ।—

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुःपलम् ।

विपचेत् सावयेन्मण्डः स भक्तो मधुरो लघुः ॥ ६६ ॥

आपक्त्वा यवागू” इति शिबदासः । अस्याः विशरेति संज्ञान्तरं ज्ञातव्यं, तथा च द्रव्यगुणपङ्कटे—“तिलतण्डुलमाषेस्तु कशरा निशरेति च” इति ॥ ६१ ॥

यवाः स्वाः बामास्यगुणमाह, यवागूरिति ।—यवागुर्ग्राहिणीत्यत्र यवागूः पेया कशरा वा ॥ ६२ ॥

विलेप्याः पाकविधिः गुणश्चाह—विलेपो चेति ॥ ६३ ॥

पेयायुषयोः मतान्तरविहङ्गं साधनविधिमाह, द्रवाधिकेति ।—द्रवाधिका घना इत्यत्र घना बह्वीत्यर्थः, “पेया सिक्थसमन्विता” इति लक्षणात् । यूपः किञ्चिद्धनः स्मृतः इत्यत्र घनत्वं चतुर्दशगुणजलसाधितपेयापेयया बोध्यम् । अत्र यूपस्य जलमानानुक्तेः पेयाशस्य चतुर्दशगुणमेव यूपेऽपि योजनीयं, यदुक्तमन्यत्र—“अर्हं शिष्टो भवेत् यूपः कचित् समदावशेषितः । अष्टादशगुणे तोये यूपमिच्छन्ति केचन । चतुर्दशगुणे तोये यूपमिच्छन्ति चापरे ॥” इति ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

भक्तस्य मण्डस्य च साधनविधिमाह, जले इत्यादि ।—मण्डः चतुर्दशगुणजलसाधितत्वेन मण्डप्रायः इत्यर्थः, भक्तः अन्नम्

मण्डपाकविधिः ।—

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः ॥ ६७ ॥

तण्डुलानामिति क्षुद्रिततण्डुलानामित्यर्थः । सावयेदिति वस्त्रादिना चालयेत् । असिक्थक इति सिक्थकरहित इत्यर्थः, अन्नादिरहितः सिक्थकः कुटीति ( सिटि ) लोके ।

अथ मांसरससाधनावधानमाह ।—

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतो द्विगुणं पयः ।

पाटस्थं संस्कृतं चाज्ये षडङ्गो गूष उच्यते ॥ ६८ ॥

पलानि द्वादश प्रस्थे घनेऽथ तनुके तु षट् ।

मांसस्य वटकं कुर्यात् पलमच्छतरे रसे ॥ ६९ ॥

अस्यार्थः ।—घने मांसरसे कर्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य द्वादशपलं दत्त्वा पक्तव्यम् । तनुके रसे कर्तव्ये मांसस्य षट्पलं पानीयं प्रस्थमिव दातव्यम् । अच्छतरे रसे कर्तव्ये प्रस्थे जले मांसस्य पलं दत्त्वा एतन्मांसं पिष्ट्वा प्रस्थाद्विषेऽपस्थितजले पक्ता अनुरूपं स्थाप्यं, वस्त्रेण क्लानयित्वा यूपः कार्यः । मांसस्य वटकं कुर्यादिति खिन्नमांसस्य पलं पिष्ट्वा वटकान् विधाय घृतादौ भर्जयित्वा अच्छतररसं साध्यमित्यर्थः, अन्यथा मांसपलस्यातिद्रवपाके विलयनं स्यादित्याशङ्क्या वटकं कुर्यादित्याह ।

लाक्षारससाधनमाह ।—

षड्गुणेनाम्भसा लाक्षा दोलायन्ते ह्युपस्थिता ।

त्रिसप्तधा परिस्त्राव्या लाक्षारसमिमं विटुः ॥ ७० ॥

नीरे चतुर्दशगुणे इत्यादिनीक्तमण्डलक्षणे तण्डुलस्य उचिताङ्गतात् चतुर्भागत्वं बोद्धव्यं, न तु भक्तोक्तचतुःपलमानत्वम् । यदा—जले इत्यादि असिक्थक इत्यन्तेन साङ्गं लोकेन केवलमण्डलक्षणे ज्ञातव्यम् ; अस्मिन् पक्षे—मण्डः स भक्तः,—मण्डाख्यः स भक्तः पानीयान्नविशेषः इत्यर्थः । सिद्धो मण्डः,—प्रदर्शितप्रकारेण साधितः मण्डाख्यः भक्त इत्यर्थः ॥ ६६।६७ ॥

मांसरसविधिमाह, द्रव्यत इति ।—द्रव्यतः यस्माधिकारे चक्रपाणिकथितषडङ्गयूपोक्त-अवादिद्रव्यापेक्षयेत्यर्थः । सर्वतः मिलितद्रव्यमांसमानापेक्षयेत्यर्थः । पयः कलम् ॥ ६८ ६९ ॥

लाक्षारससाधनविधिमाह, षड्गुणेनेति ।—षड्गुणेनेति लाक्षामपेक्ष्य बोद्धव्यम् । त्रिसप्तधा एकविंशतिवारान् ॥ ७० ॥

अथ प्रक्षेपविधिमाह ।—

प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात् स्नेहे कल्कसमो मतः ।

परिभाषामिमामन्ये प्रक्षेपेऽप्युचिरे परम् ॥ ७१ ॥

अस्यार्थः ।—स्नेहे पातयदृतादिसाधने तेलोदिसाधने वा प्रक्षेपः शर्करा-  
मधुप्रभृतीनामिति कल्कसमो मतः ज्ञायते अत्र इत्यर्थः । क्वाथ्यादिति  
पाचनादिद्रव्यात् कर्षात् प्रक्षेपः पादिकश्चतुर्माषको ज्ञेय इति चक्र-  
पाणिदत्तसम्मतः । अन्येऽपि छन्दादय इमां परिभाषां प्रक्षेपेऽपि ऊचिरे  
परिभाषयास्वभूतः, अत एव चक्रदत्तोऽपि तत् स्वीकृत्य स्वसङ्ग्रहे  
लिखितवान् ।

चूर्णादीनां भक्षणप्रकारमाह ।—

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुड़िकानाञ्च सर्वशः ।

द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥

मात्रा क्षौद्रघृतादीनां स्नेहकाथेषु चूर्णवत् ॥ ७२ ॥

अस्यार्थः ।—चूर्णं कल्को गुड़िका, चकारात् वटिका च यद्युपयुज्यते  
तर्हि सर्वत्र बल्यमाणाविशेषं विना तोलकद्वयमुपयुज्यते । स चूर्णादिः  
कर्षो यदि लेढव्यः, तर्हि द्रवशुक्त्या मात्रिकप्रभृतीनाम् अर्द्धपलेन तोलक-  
चतुष्टयेनेति यावत्, चूर्णस्य तथा लेढुं सुखत्वात् ; पातव्यश्चेत् तदा चतुर्द्रव  
इति मात्रिकादीनां चतुर्गुणेन पजेनेति शेषः, तथा सति चूर्णस्य पातुं  
सुखत्वादित्यस्य प्रधानार्थः साम्प्रदायिकैश्चक्रदत्तादिभिर्मन्यते । अन्ये तु  
प्रक्षेपेऽप्येनां मन्यन्ते ; तथा हि तेषामयमर्थः,—यत्र चूर्णस्य कल्कस्य गुड़िका-  
नाञ्च भेषजानामुपयोगस्तत्र कर्षः प्रक्षेपो दातव्यः । शेषार्थः सुगमः । मात्रा  
क्षौद्रघृतादीनामिति क्षौद्रप्रभृतीनां मधुघृतगुड़ानां स्नेहे काथे वा प्रक्षेप-  
श्चूर्णवत्, चूर्णस्य उक्तः ; तर्हि यत्र घृतादयः प्रक्षेप्यास्तत्रैषां घृतक्षौद्रादीनां

प्रक्षेप इत्यादि ।—“इमां बल्यमाणान्” इति शिवदासः ; तेन “कर्षश्चूर्णस्य  
कल्कस्य” इत्यादिना बल्यमाणात्वार्थः । “परम्” इत्यत्र “यथा” इति चक्र-  
दत्तपाठः ॥ ७१ ॥

इति परिभाषाप्रदीपे द्वितीयखण्डव्याख्या समाप्ता ।



कर्ष इत्यर्थः ; एतन्न, रास्त्रादिकाथ्यस्य कर्षस्य प्रक्षेप्यं मिलितयोः शर्करा-  
मधुनोः पादिकं साधवतुष्टयं प्रदेयमिति साम्प्रदायिकमतम् ; यदुक्तमन्यत्र,  
—“प्रक्षेपः पादिकः काथ्यात् स्नेहे कल्कसमो मतः” इति “अयमग्रातमः  
सर्व-वादिनामविवादतः” इति । अन्ये तु शर्करामधुनोः प्रत्येकं द्रव्यं  
कृत्वा मिलित्वा द्रव्यद्वयं कर्षं दातव्यमाहुः ; “शाखौ द्वौ द्रव्यं विद्यात्  
तौ द्वौ कर्ष उडुम्बरः ।” “परमतमव्याहतमनुमतमेव” इति न्यायात्  
चक्रदत्तानुमतमेतत्, किन्तु सर्वत्र मेवम् ; अपितु क्वचित् किञ्चिद्दोषवयो-  
वङ्गाद्यपेक्षया इत्यवधेयम् । वस्तुतस्तु वातज्वरार्त्ते रास्त्रादिकषाये शर्करा-  
साधकतयं मधुमाषिकं प्रक्षेप्यमर्हति, यथा चैतत् तथा—“षोडशाष्टचतुर्भागं  
याति पित्ते कफे क्रमात् । क्षोद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा ॥”  
इति संहितोपाये स्वयमेव चक्रेण व्याख्यातम् । इह तु पादिकप्रक्षेपात्  
क्रियासिद्धिरित्यभिप्रायेण तन्नाभिहितं, ह्ययमन्यत् । किञ्च चूर्णवदिति  
प्रक्षेप्यक्षोद्रवृतादीनामपि चूर्णं इव, चूर्णस्य जरणादियथा शाखाः प्रक्षेपस्तथा  
क्षोद्रवृतादीनामपि शाखो दीयः इति गुरवः, प्रक्षेपः पादिकः काथ्यादिति  
सक्यस्य एकवाक्यत्वान्नोद्हरम् ।

काथेन चूर्णपानं यत् तत्र काथप्रधानता ।

प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः ॥ ७३ ॥

अस्यार्थः ।—यत्र चूर्णपानं यौगिकं तत्र चर्णस्य प्राधान्यात् कर्षमानं,  
कस्मात् काथ्यं चतुर्गुणं, तस्य काथस्य तत्र अप्राधान्यं, यत्र काथेन सह  
प्रक्षेप्यस्य चर्णस्य पानं तत्र काथस्य प्रधानत्वाच्चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः चतुर्गुणत्वं  
द्रवस्य न प्रवर्तते इति ।

मतान्तरमाह द्रव्यविशेषस्य ।—

माषिकं हिङ्गु सिन्धूलं जरणाद्यास्तु शाणिकाः ।

सितोपलागुडक्षोद्रं सामान्यांशप्रकल्पनाः ॥ ७४ ॥

अस्यार्थः ।—हिङ्गुसैन्धवयोः प्रक्षेप्ययोस्तेष्वामाषिकम् । जीरकाद्याः  
मूत्रः काथ्यान् पादिका एव । सितोपला-स्तिता-शर्करादीनाञ्च सामान्यानां  
सामान्यानाम् उन्नतस्य पलं मात्रा इत्यादीनामिव अंशांशकल्पनाः ।

काय्या इति सामान्यांशं पलविकर्षार्द्धपलरूपं सौश्रुतमित्यर्थः । सामान्य-  
मिति प्रक्षेपः पादिकः काय्यादिति, तेन पादिकम् इति गुरवः ।

दोषभेदे मधुशर्करयोः प्रक्षेप-मानमाह ।—

षोडशाष्टचतुर्भागं वातपित्तकफाक्षिप्तं ।

क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा ॥ ७५ ॥

षोडशाष्टचतुर्भागमिति वायो पित्ते च कफे च कषायपाने क्षौद्रं प्रक्षेप्यं  
वायो षोडशांशं, पित्ते अष्टांशं, कफे चतुर्थांशम् । शर्करायास्तु वायो  
चतुर्थांशं, पित्ते अष्टमांशं, कफे षोडशांशमिति विपरीतेति वचनसामर्थ्यात् ।  
क्षीरादिपाकमाह ।—

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीराक्षौद्रं चतुर्गुणम् ।

क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ७६ ॥

क्षीरमस्वारनालानां पाको नास्ति विनाऽभ्रसा ।

सम्यक्पाकं न गच्छन्ति तस्मात् तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७७ ॥

एतत्तु वचनं केवलक्षीरपक्वपाचनादौ क्षीरपञ्चमूल्यादावित्यर्थः,  
नान्यत्र तैलवृतादिपाके, तत्र द्रवान्तरमस्येव, यत्र तैलादिपाके केवलं  
चतुर्गुणं क्षीरमेवास्ति, न द्रवान्तरमस्ति, तत्र कण्ठीकृत्वात् परिभाषा न  
प्रवर्तते; यथा “अयत्कानुक्तलेशोक्तसन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः” इत्यभिप्रेत्य  
व्याख्येयमिति गुरवः ।

इति परिभाषाप्रदीपे द्वितीयः खण्डः ।

## तृतीयः खण्डः ।

अथ स्नेहसाधने काय्यजलादेः परिमाणमाह ।—

काय्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् ।

क्षेदात् स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥

चतुर्गुणत्वेष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् ॥ १ ॥

अथेदानीं स्नेहपाकविधिमाह, काय्यादिति ।—पादस्थं स्याच्चतुर्गुणमित्यस्य स्नेहा-  
दित्यनेन सम्बन्धः । काय्यद्रव्यापेक्षया चतुर्गुणं द्रवद्वैगुण्यादष्टगुणं नलं पादार्थं दत्त्वा  
क्षेदादि चतुर्भागावशिष्टं सत् स्नेहाच्चतुर्गुणं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १ ॥

अपिच ।—

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।

द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २ ॥

अन्यच्च ।—

जलमष्टगुणं क्वाथ्यात् क्वाथश्च जलपादिकः ।

क्वाथाच्च पादिकः स्नेहः स्नेहात् कल्कस्तु पादिकः ॥ ३ ॥

पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ ।

तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

केवलं चौरद्रवेष पक्षस्य स्नेहस्य विधिमाह, अवेति ।—अत्र चौरषट्पलघृते, द्रवान्तरानुक्तौ स्वरसक्वाथादिद्रवान्तरानुक्तादित्यर्थः । परिभाषेयं ज्वराधिकारे चौरषट्पलकै घृते लिखिता श्रीचक्रपाणिना ॥ २ । ३ ॥

पञ्चप्रभृति इति ।—अर्वाक् पञ्चम्यो द्रव्येभ्योऽर्वाक् एकद्वित्रिचतुःपथ्यन्तम् इत्यर्थः, चतुर्गुणमिति मिलित्वा चतुर्गुणमित्यर्थः, “स्नेहात्तीयं चतुर्गुणम्” “स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः” इति अरकसुश्रुतोक्त्या चतुर्गुणद्रव स्नेहपाकस्थोत्सर्ग-विज्ञत्वात् । अत्राह प्रथितनामा गङ्गाधरः,—“तत्र निशाद्यं—स्नेहचतुर्गुणो द्रव इति यदुक्तं तत् किमेकस्य द्रवस्य ? अथ किं द्वयोः ? अथवा त्रयाणां चतुःप्रभृतीनां सर्वेषामिति ? तत्राह कश्चित्—एकेनापि द्रवेष चातुर्गुण्यं, द्वाभ्याश्च चातुर्गुण्यं, त्रिभिरपि चातुर्गुण्यं, चतुर्भिस्तु सममिति चातुर्गुण्यम् । इत्येवमेकद्वित्रिचतुःपथ्येषु चतुर्गुणत्वान्न स्नेहसाधनप्रतिषेधाद्यै “स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः” इति सुश्रुतः, “स्नेहात्तीयं चतुर्गुणम्” इति दृढबल उक्तवान्, न तु पञ्चप्रभृतिद्रवेषु चतुर्गुणाधिक्ये प्रतिषेधायेम् । तत्र ‘भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया’ इति परिभाषया स्नेहसमत्व प्रत्येकमिति । अथैवञ्चेत्तर्हि यत्र चौरमेकमेव द्रवं, तत्र चौरमेव चतुर्गुणं भवति भवतु, यत्र तु चौरश्चापरश्च द्रवमेकं द्वयं वा, तत्र किं चौरैश्च सहापरैश्चैकेन द्रवेष चातुर्गुण्ये कर्तव्ये समता चौरापरयोः कर्तव्या ? तथाले चौर द्विगुण द्रवान्तरश्च द्विगुणं भवति । चौरैश्च सह चापरयोश्चातुर्गुण्ये च किं समता कर्तव्या ? तत्र त्रयाणां चातुर्गुण्ये कृते प्रत्येकं समत्वमिति । तत्राह—नेवं, चौरै विशेवचक्रानात्, तद्वदथा—“यत्र द्रवान्तरं गौक्षं तत्र चौरं चतुर्गुणम् ॥ द्रवान्तरप्रयोगे तु चौर स्नेहसमं मतम् ॥” इति । नन्वेतेन द्रवान्तरप्रयोगे चौरस्य स्नेहसमत्ववशेन तत्र यत् द्रवान्तरमेकं द्वयं त्रयं वा, तत् किं चौरं,

अस्यायः ।—अत्र यशोधरव्याख्यामाह—अत्र मिलित्वेव चातुर्गुण्य-

विनेकेन चातुर्गुण्यं, हाभ्यामपि चातुर्गुण्यं, विभिरपि चातुर्गुण्यं, चतुर्भिः सममिति चातुर्गुण्यं कर्तव्यम् ? अथ किं चोरेण सहेव ? चोरेण सह द्रवान्तरमेकं यत्र तत्र विशेषीकृत्या किं चोरेण सहस्रम द्रवान्तरमेकं विगुणं इयमपि विगुणं यद्यमपि विगुणमिति प्रत्येकं सममिति ? तदाह—चोरेण सहस्रं द्रवान्तरं चतुर्गुणं कर्तव्यं, तत्र चोरेण सहस्रमं, द्रवान्तरमेकं विगुणं, इयमपि विगुणं, यद्यमपि विगुणमिति सचोरेण चतुर्णां सममिति । तदुक्त—“पञ्च प्रभृति यत्र स्याद्भूतु स्नेहसविधौ । तत्र स्नेहसमं प्राहुरवाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ स्नेहात् स्नेहसमं चोरेण कल्कस्तु स्नेहादित्तः ॥” इति । अथ स्नेहसमं चोरमित्युक्तेरवाक् स्नेहाच्चतुर्गुणवचनात् चोरेण सहस्रवाक् द्रवाणां चातुर्गुण्यं, “स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः” इति सुश्रुतवचनात् “स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम्” इति दृढवचनवचनात् इति । नैवं विज्ञायते, अवाक् पञ्च प्रभृति द्रवात् चेत् स्यात् तदा स्नेहाच्चतुर्गुणमित्युक्त्या केकेन द्रवान्तरेण चोरोक्तौ चोरेण स्नेहसमं विगुणमपरं द्रवम् । हाभ्यां सह चोरोक्तौ चोरेण स्नेहसमं, इयोर्द्रवान्तरयोः प्रत्येकं स्नेहात् साहस्रगुणत्वमिति मिलितबोद्धेगुण्यम् । त्रिभिः सह चोरोक्तौ चतुर्णां चोरसहितानां प्रत्येकं सममिति चातुर्गुण्यं यथा भवति, तदा किं चतुर्भिः सह चोरोक्तौ पञ्चप्रभृत्युक्तिर्भवति, तत्र प्रत्येकं सममिति चोरेण स्नेहसममिति न व्याहृत्ये इति चेत्तदा “चतुःप्रभृति यदोक्तम्” इत्येव पाठात् सिध्यति, व्यर्थः पञ्चप्रभृतीति पाठः ? द्रवान्तरैर्द्विभिः सह चोरोक्तौ अत्रापि द्रवाणि भवन्ति, तत्र स्नेहसममिति सिध्यति, चोरेण स्नेहसममित्युपपद्यते । एवम्पपत्तौ कृत्वा यत् पञ्चप्रभृतीति पठितं, तेनैवं विज्ञापितं, यत्र चोरेण सहस्रं इयं यत्र चतुष्टयं वा द्रवमुक्तं, तत्र चोरातिरिक्ता-द्रवान्तराणामेकेनापि चातुर्गुण्यं, हाभ्यामपि चातुर्गुण्यं, विभिश्च चातुर्गुण्यं, चतुर्भिस्तु सममिति प्रत्येकं मिलित्वा चातुर्गुण्यमिति पञ्च प्रभृति द्रवात् चोरातिरिक्ता-द्रवाणामेकं द्रवान्तरमपि चतुर्गुण्यं, इयमपि मिलित्वा चतुर्गुण्यं, यद्यमपि मिलित्वा चतुर्गुण्यं, चतुष्टयमपि मिलित्वा चतुर्गुण्यमिति प्रत्येकं समं, चोरेण सर्वत्र स्नेहसममिति यद्यगुणे पाठः । उक्तञ्च—“एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु कृत्वा स्नेहाच्चतुर्गुणम् । चोरेण स्नेहसमं तत्र मानानुक्तावयं विधिः ॥” इति । केचित्तु चतुर्गुणमित्यस्य मिलित्वा चातुर्गुण्यव्याख्याने यत्र स्नेहे द्रवचतुष्टयं विद्यते, तत्र प्रत्येकद्रवस्य स्नेहसमत्वे पञ्चप्रभृति इत्युपादानस्य वैश्वर्यात् अवाक् च स्याच्चतुर्गुणमित्यस्य एकादिचतुःपथ्येन द्रवे विद्यमाने प्रतिद्रवस्य चतुर्गुणत्वमिति व्याचक्षते, तदा च—“द्रवाणि यत्र स्नेहेषु/

मिति युक्तेन एकादिवतुर्द्रवपर्यन्तम्, अन्यथाऽत्रानुपपत्तिः स्यात् ।  
द्रवचतुष्टयविषयेण (?) चरितार्थमेव तद्वचनं, तत्र द्रवचतुष्टयसमन्वे  
तु न वस्तुवृत्तिः ; तस्मादेकेनापि चातुर्गुण्यत् इत्यादि चतुर्भिः सममित्यन्ता  
परिभाषा द्रवचतुष्टयविषये तावत् । यत्र स्नेहादेः पाकविधौ द्रवाणि  
पञ्चप्रभृतिषट्सप्ताष्टाधिकतराणि च देयानि स्युः, तत्र स्नेहसमानानि  
देयानि ; अर्वागिति पञ्चशब्दस्य, अर्वाक् पञ्चमादित्यर्थः, तेन एकादि-  
चतुःपर्यन्तं द्रवाणां चातुर्गुण्यं स्नेहभागापेक्षया इति । एक-द्वि-त्रि-द्रव-  
योगेऽपि मिलित्वा चातुर्गुण्यं, चतुर्षु द्रवेषु तु प्रत्येकं स्नेहस्य भागापेक्षया  
चातुर्गुण्यमित्येके वदन्ति, एतेन चतुर्णां चातुर्गुण्यं, त्रयाणामपि  
द्वयोरपि एकस्यापि चातुर्गुण्यं, पञ्चापेक्षया एषाम् एकादिचतुर्णां प्रति  
चार्वाक्त्वमित्यभिप्रायः ।

अन्यच्च ।—

एकद्वित्रिद्रवद्रव्यैः कुर्यात् स्नेहाच्चतुर्गुणम् ।

क्षीरं स्नेहसमं देयं चतुर्भिश्च चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ।

काथ्याच्चतुर्गुणं वारि काथः स्नेहसमो भवेत् ॥ ६ ॥

जलस्नेहौषधानाञ्च प्रमाणं यत्र नैरितम् ।

पादः स्यादौषधं स्नेहात् स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७ ॥

एकादीनि भवन्ति हि । तत्र स्नेहसमान्याहुयथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥” अत्र यथापूर्वं चतुर्गुण-  
मिति विद्योमतः पूर्वं पूर्वं चतुरारभ्येकान्तं द्रव प्रत्येकं स्नेहाच्चतुर्गुणं देयमित्यर्थः ॥ ४ ॥

मतान्तरमाह, एकेति ।—स्नेहाच्चतुर्गुणमिति मिलित्वा, चतुर्भिश्च चतुर्गुणमिति  
प्रत्येकं बोद्धव्यं, पृथक् वचनात् । स्नेहात्तोयं चतुर्गुणमित्यत्र तोयशब्दः द्रवसावस्वीप-  
लक्षणम् । काथ्याच्चतुर्गुणं वारि इत्यत्र “चतुर्गुणन्त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत्” इति  
नियमात् जलमत्राष्टगुणं बोद्धव्यम् ; अथवा मृदुद्रव्यविषयिणोऽयं परिभाषा मन्तव्या,  
“मृदो चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं भवेत्” इत्यादि पूर्वोक्तनियमात् । काथः स्नेहसमो  
भवेत् इत्येषा परिभाषा पञ्चप्रभृतिद्रवविषयिणो ज्ञेया, अन्यथा एकादिचतुःपर्यन्तेषु  
द्रवचातुर्गुण्यनियमवाधात् । “काथः स्नेहसमो भवेत्” “काथः काथसमो भवेत्”,  
इति पाठान्तरद्वयम् ॥ ५—७ ॥

हृषादिकुसुमात् कल्कः केवलं स्नेहसिद्धये ।

यत्रोक्तः स्नेहपादार्धः स्नेहकार्ये मनौषिभिः ॥ ८ ॥

अथ च ।—

स्नेहे सिध्यति शुद्धास्व-नि कायस्वरसैः क्रमात् ।

कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ९ ॥

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैः पाको यत्रैरितः क्वचित् ।

जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत् ॥ १० ॥

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैरतोपलक्षणे तृतीया । माङ्गल्यं दधि ।

न मुञ्चति रस द्रव्य क्षीरादिभिरुपस्कृतम् ॥

सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तायं चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥

विष्णुतेलपाके केवलं दुग्धचतुर्गुणे पाकः, तत्र वीर्याधानार्थं जलं चतुर्गुणं केचिद्विच्छन्ति, तदसत् ; आयं क्षीरपाकः, किन्तु क्षीरचतुर्गुणे तैलस्य पाकः, नेदं तैलं द्रवप्रधानम्, “एतदङ्गवरं तैलम्” इति ग्रन्थान्तरे प्राठात्, अङ्गवरं कल्कप्रधानमित्यर्थः । अथवा पाको द्विविधः क्षीरस्य—क्षीर-करणकः, क्षीरकर्मकः । अत्र पुनः क्षीरकरणकः पाकः । क्षीरकर्मकः क्षीरपाकः “द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्” इति वचनात् अत्र चतुर्गुणं द्रवं विना सम्यक् पाको न स्यादित्यर्थः । यदि तु विष्णुतैले जलं चतुर्गुणं ददाति तदा द्रवबाहुव्यदोषः स्यात्, चतुर्गुणदुग्धेनैव फलसिद्धेः इति गुरवस्त्वाहुः ; परिभाषा तु कण्ठोक्तं विना इति ।

स्नेहपाकविधौ यत्र क्षीरमेकन्तु कथ्यते ।

तोयादौनामनिर्देशे क्षीरमेव चतुर्गुणम् ॥ १२ ॥

एतदेव समाधानमव्युचितम् ।

पुष्पकल्कविषयिणौ परिभाषामाह, हृषादीति ।—हृषादिकुसुमात् बावकादि-  
पुष्पात्, बादिर्देन यणकोविदारादीनां यदृशं, यदुक्तमन्यत्र—“अणुष्य कोविदारख-  
ककुभस्य च माखनैः । कल्काख्ये वात् पुष्पकल्कं प्रस्ये पलचतुष्टयम्” ॥ इति ।  
स्नेहपादार्धः स्नेहाटमात्रं अर्धशः, अर्धल्यस्य “पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्य तौघ-  
चतुर्गुणम् । स्नेहात् स्नेहाहतांशस्य पुष्पकल्कः षडङ्गत्वे ॥” इति ॥ ८ ॥

अकल्कोऽपि भवेत् स्नेही यः साध्यः केवले द्रवे ॥ १३ ॥

स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नेरितं क्वचित् ।

स्नेहस्य कुडवं तत्र पचेत् कल्कपलेन तु ॥ १४ ॥

मानानुक्तौ घृते तैले प्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः ॥ १५ ॥

द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि बहुमात्राच्च पादिकम् ।

योग यदि पचेद्भट्टो हीनवीर्यं भवेत् तदा ॥ १६ ॥

तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता ।

अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् ॥ १७ ॥

अन्येऽप्याहुः ।—

अङ्गेऽप्यनुक्ते विहितन्तु मूलं भागेऽप्यनुक्ते समता विधेया ।

द्रवेऽप्यनुक्ते जलमेव देयं कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम् ॥ १८ ॥

प्रसारण्यादिनिर्दिष्टं शतमेकं पृथक् पृथक् ।

जलद्रोणेन चैकैकं साधयेत् क्षणकुट्टितम् ॥ १९ ॥

काथ्यद्रव्यस्य बाहुल्यात् उदकं स्रव्यमेव तु ।

सम्यक् पाकं न जायेत हीनवीर्यन्तु केवलम् ॥ २० ॥

स्नेहे इत्यादि ।—उपस्कृतं साधितम् ॥ १—१३ ॥

अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां मात्रा निर्दिशति, स्नेहेति ।—स्नेहस्य कुडवं जवेति परिभाषा नव्यविषयिणी ज्ञातव्या, “अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इत्यने । नव्यादौ स्नेहकुडवं इत्यने स्नेहवेदिना ॥” इति शास्त्रात्, “मानानुक्तौ घृते तैले प्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः” इति वस्तुनाथशास्त्रविरोधाच्च । मानानुक्तावित्यादि परिभाषा नव्येतरविषयिणी बोद्धव्या ॥ १४।१५ ॥

द्विगुणमिति ।—निर्दिष्टमात्रात् द्विगुणादिकम् अल्पमात्रं वा स्नेहलेपादिकं प्रत्यक्षमौषधं यदि पचेत्, तदा तदौषधं हीनवीर्यं भवेदित्यर्थः ॥ १६—१८ ॥

प्रसारण्यादौति ।—प्रसारण्यादिषु कुक्षप्रसारणी-विशतीप्रसारणी सप्तशतीप्रसार-ण्यादिषु निर्दिष्टं शतमेकं प्रत्येकशतपलमित्यर्थः, विशतीप्रसारण्यादितेतिषु प्रतिशतपलकायाश्च द्रोणमितं कल इत्यादि । पृथक् पृथक् पलान्यं, प्रतिशतं द्रोणमित्यन्ना-दित्यर्थः ॥ १९।२० ॥

कल्कक्राथावनिर्देशे गणात् तस्मात् समाहरेत् ॥ २१ ॥

समस्तं वर्गमङ्गं वा यथात्ताभमथापि वा ।

प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित् ॥ २२ ॥

यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधौ ।

तत्रैव कल्कनिर्य्यूहाविध्येते स्नेहवेदिना ॥ २३ ॥

यत्रेथादि ।—अधिकारितया यत्र गणत्वमधिकृतं तत्रोभयकल्पना, यत्र तन्नास्ति तत्र मुख्यतया कल्ककल्पनैव ; अतः चक्रपाणिभूतसङ्ग्रहे पिप्पल्यादिभूते-तेनैव परिभाषा लिखिता । तत्र निश्चलकरणे व्याख्यातं—न चायं पिप्पल्यादिगणोऽधिकरणेन उक्तिरिति, अतः पिप्पल्यादेः कल्कसाध्यत्वं ज्ञेयं, न काथकल्कौ कुर्यात् इति । अत्र चोक्तम् “एतद्वाक्यबलादेव कल्कसाध्यपरं भूतम्” इति । यत्र स्नेहसाधने अधिकरणेन उक्तिः स्यात्तत्र गणे कल्कनिर्य्यूहौ साध्यौ ; यत्र गणे अधिकरणेन उक्तिर्नास्ति तत्र कल्ककल्पनैव, न काथः कार्य्य इति ।

कल्कक्राथावृत्तौ विधिमाह, कल्केति ।—यत्र स्नेहः अथ कल्कः अथ काथः इत्येवं निर्देशो न विद्यते, अथच विदारोगन्वादिगणेन शालसारादिगणेन कानिगन्वादिगणेन वा स्नेहः साध्यः इत्येवं निर्देशः कृतः, तत्र तस्यैव गणस्य कल्कं पादिकं काथश्च चतुर्गुणं दत्त्वा स्नेहः साधनीय इति । “समस्तं वर्गमङ्गं वा” इत्यादि परिभाषाऽपि गणविषयिणी ज्ञेया ॥ २१।२२ ॥

गणेन स्नेहसाधनोक्तौ कर्तव्यविधिमाह, यदेति ।—स्नेहसंविधौ स्नेहपाकविधौ यत्र गणे अधिकरणेन अधिकारतया, गणमधिकृत्येत्यर्थः, उक्तिः स्यात्, पारम्पर्यादिगणेन भट्टटार्कादिगणेन वा स्नेहः साध्यः इत्येवमुक्तिर्विद्यते इत्यर्थः, स्नेहवेदिना तत्रैव कल्कनिर्य्यूहौ तस्य गणस्य कल्कक्राथौ इष्येते, अन्यथा कल्क एव इष्यते इत्यर्थः । प्रथमतया गङ्गाधरस्तु श्लोकमिममन्यथा व्याचष्टे—“यत्राधिकरणे यस्मिन् स्थाने, स्नेहसंविधौ स्नेहसाधनविधाने, गणे द्रव्याणां समूहे, कल्कक्राथविशेषेण नीत्तः तत्रैव कल्कनिर्य्यूहास्ति । अधिकरणशब्दस्तु स्थाने प्रयुज्यते सर्वेराचार्य्यैः ; तैत्तिरीयोपनिषदुक्तम्—“अथातः स्नेहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः पञ्चस्यधिकरणेष्विति” । तस्मादनिर्देशे यावान् द्रव्यगणः स्नेहसाधने निर्दिष्टः, स च द्रव्यगणः कल्कतया, काथतया च प्रयोक्तव्यः,



गणोक्तमपि यत् द्रव्यं भवेद्वाधावयौगिकम् ।

तदुद्धरेत् यौगिकन्तु प्रक्षिपेत् यदकीर्तितम् ॥ २४ ॥

यत्र व्याधौ ये गणाः सन्ति तत्रैव धात्वपेक्षया न विहितास्तत्र गणोक्ताः अपि अयोगिकत्वात् हेयाः, धातुव्याध्यनुरूपम् अकीर्तितमपि यौगिकं प्रक्षिपेत् । यथा—वायौ रूक्षशैत्यादि, तोक्ष्यकटुकादि पित्ते, कफे स्निग्धमधुरादि, एतत् सर्वं गणोक्तमपि न देयं, वातादिषु यदुपयुक्तं तदेव देयम् ; यदुक्तं लौहशस्त्रे पतञ्जलादयः,—“उचितमपि हेयमौषधमनुचितमुपादेयम्” इति सङ्क्षेपः, उचितमययौगिकं हेयम्, अनुचितं यौगिकमपि धात्वनुरूपमुपादेयं ग्राह्यमित्यर्थः ।

शार्ङ्गधरस्वाह ।—

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा ।

चतुर्गुणद्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ २५ ॥

पलोन्मितेति पानादौ मात्रा देया निष्पन्नस्य घृतादेः ।

निक्षिप्य काथयेत्तोयं काथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ।

पादशेषं गृहीत्वा तु स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २६ ॥

क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्कारनालादिषु पञ्चरात्रम् ।

न चायं गणशब्दो गणसंज्ञया यो यो गणः पञ्चमूलादिरुक्तः, तन्मात्रे विवक्षितः, किंचु विप्रवृत्तिद्रव्यसमूहं विवक्षितः, गणात्तस्मादत्युक्तेः” इति ॥ २१-२४ ॥

इदानीं स्नेहसाधने शार्ङ्गधरमतसुपव्यञ्जलि, कल्कादिति ।—तस्य मात्रा पलोन्मिता इति उत्तमबलानक्षादिविशिष्टपुरुषापेक्षया, “उत्तमस्य पल मात्रा विभिन्नाज्ञेय सध्यमे । कथनस्य पलाज्जैन स्नेहज्ञाथोपपेक्ष च ॥” इति पूर्वोक्तस्मरणात् ॥ २५-२६ ॥

“घृततैलगुडादौ नैकाद्याद्वहारयेत् । व्युत्तितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् ॥” इति स्मरणात् गुणवेशिष्यार्थे क्षीरादिना प्रकृत्य स्नेहस्य विरामकात्समाह, क्षीरे इति ।—क्षीरेण सप्त पक्त्यजेदस्य एकाहेनैव पाको न निष्पादनीयः, प्रथमदिनं किञ्चित् क्षीरावशेषं पक्वा अवतार्ये व्यापयेत्, ततो द्वितीयदिने पाकशेषं कुप्यात्, एव स्वरसादिवपि यथानिर्देशं कर्तव्यम् ; यथावा क्षीरेण सप्त पक्वा, किञ्चित् क्षीरावशेषमवतार्ये विरामं व्यापयेत्, ततस्तृतीयदिने पाकशेषं कुप्यात्, तथा च अष्टमदिने पादान्तरं यथा—“स्नेहान् विपाच्य विरामयेत् क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रम् । कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रं द्विधारताको पुनरेकरात्रम् ॥”

स्नेहं पचेद्देववरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः ॥ २७ ॥

इति । अत्र पुनरिदं निज्ञास्यं—स्नेहोऽयं किं द्रवेणादौ पक्तव्यः पश्चात् सचतुर्गुण-  
जलेन कल्केन ? उतादौ कल्केन पश्चात् द्रवेण कार्यः ? आहोस्मिन् कल्के द्रवश्च  
ऐक्यं संसृज्य पक्तव्यः इति ? उच्यते, “स्नेहास्तुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो  
भेषजकल्कः, तदैक्यं संसृज्य विपचेत्” इति सुश्रुतवचनात् कल्कं द्रवश्च स्नेहे  
दत्त्वा एकत्र विपचेत्, न तु पृथक् पृथक् इति । एवञ्च “चौरि विरावं स्वरसे विरावं  
कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रम्” इत्यादिवचनेन चौरादिषु पृथक् पृथक् विरामकाल-  
दर्शनात् चौरादिद्रवेषु कल्के च यत् पृथक् पृथक् पाकः कार्यः इति केषाञ्चित् मतं,  
तत्र सम्यक्, युक्तिविरोधात् सुश्रुतविरोधाच्च ; यदि हि कल्कपाकः पृथक्  
क्रियेत, तदा किं स्नेहेन कल्कस्य भजनं कर्तव्यम् ? न च तथा व्यङ्ग्यं तडाः,  
कल्कपाकाद्ये चतुर्गुणं जलं दातव्यमेतत् “स्नेहास्त्रिद्वौ द्रवेऽनुक्ते सर्ववाभश्चतुर्गुणम्”  
इति निबन्धात् अनुक्तद्रवे एव जलं विहितं, न तूक्ते द्रवे, अतः पुनर्जलदाने  
द्रवाधिक्यात् परिभाषाविरोधः, तस्मात् द्रवं कल्कञ्च एकत्र दत्त्वा विपचेत्, तत्र चौरिण  
पक्त्वा विरावं स्वरसेन विरावमित्यादिद्वयं विश्रामयेत्, यत्र तु केवलः कल्कः  
द्रवान्तराभावश्च, तत्रैव चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पक्त्वा च पञ्चरात्रं विश्रामयेत् इति । अत्राह  
श्रीगङ्गाधरः,—“अथ स्नेहाकोऽयं किं द्रवेणादौ पक्तव्यः, पश्चात् कल्केन चतुर्गुण-  
जलेन ? अथवा आदौ कल्केन पश्चात् द्रवेण कार्यः ? इति चेन्न, यतः सुश्रुतेनोक्तं—  
“स्नेहास्तुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः, तदैक्यं संसृज्य विपचेत्”  
इति ; तस्मात् स्नेहे कल्कं द्रवश्च दत्त्वा एकत्र पचेत् इति, न तु पृथक्  
पृथक् । तत्राह कश्चित्, “स्नेहान् विपाच्यैव विरामयेत्तु चौरि विरावं स्वरसे  
विरामम् । कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रं दध्यारनाले पुनरेकरात्रम् ॥” इत्यनेन  
पृथक् पृथक् विरामकालवचनात् चौरादिषु पृथक् पाकः कल्के च पृथक् पाकः  
इति, तत्र, सुश्रुतवचनविरोधात् युक्तिविरोधाच्च । यदि हि पृथक् कल्केन पाकः  
कुर्यात्, तदा स्नेहे किं कल्कं संसृजेत् ? ततः पाकाद्ये चतुर्गुणं जलं दातव्यमेतत् तत्र  
परिभाषा ‘स्नेहास्त्रिद्वौ द्रवेऽनुक्ते सर्ववाभश्चतुर्गुणम्’ इति, तत्र द्रवानुक्तौ जलं  
विहितं, न तूक्ते द्रवे सति जलविधानं, तस्मादेव सुश्रुतवचनाविरोधेनेन व्याख्येयं,  
चौरादिद्रवाणि कल्कश्चैक्यं संसृज्य विपचेत्, तत्र चौरिञ्च कल्कस्य यत्र, तत्रैक्यं  
इयं संसृज्य पक्त्वा विरावं विश्रामयेत् । स्वरसञ्च कल्कस्य यत्र, तत्रैक्यं संसृज्य  
पक्त्वा विरावं विश्रामयेत् । यत्र कल्कस्य चौरादीनां विरमादिकानि द्रवाणि

द्वादशाङ्गन्तु मूलानां वल्लोना क्रममेव च ।

एकाहं त्रीहिमामानां पाकं कुथ्याद्विचक्षणः ॥ २८ ॥

चतुर्गुणं स्रुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् ।

तथाच मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥

अत्यन्तकठिने द्रव्ये नोरं षोडशिकं मतम् ॥ २९ ॥

कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं जलम् ।

तद्वृद्धं कुडवं यावत् भवेत् अष्टगुणं पयः ॥

प्रस्थादितः क्षिपेन्नोरं खारौ यावच्चतुर्गुणम् ॥ ३० ॥

अम्बुकाथरसैर्यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम् ।

कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ३१ ॥

अ, तत्र कल्कं गर्भे दत्त्वा, ततश्च क्षीरादिकञ्च प्रत्येकं दत्त्वा संसृज्य पक्त्वा स्वस्तीकृतकालं विरामयेत्—क्षीरे विरामं, खरसे विरामं, कषाये पञ्चरात्रं, दध्ने एकरात्रम्, भारनाले चैकरात्रमिति । कल्के चागुक्तद्रवे यत्र स्नेहपाकः, तत्र चतुर्गुणं जलं कल्कञ्च ऐश्वर्यं संसृज्य पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत् । विशेषेण गुणानां धानार्थम्, उक्तं हि—“वृत्तैस्तुल्यगुडादींश्च नैकाद्यादवतारयेत् । व्युषितास्तु प्रपूर्वात्स्वि विशेषेण गुणान् यतः ॥” इति । क्षीरादिभ्यो द्रव्येभ्योऽन्वय द्रवे तत्कसुरासवाद्यो स्नेहपाकः एकदिने सम्भवति, तदग्राह्यार्थं नैकाद्यादिति । विरामरात्रात् गूढले तु विशेषेण गुणाधानाभावनात्, न तु स्नेहपाकासिद्धिः, अधिके अ न दोषः इति निष्कर्षः इति । द्वादशाङ्गमिति ।—केवलं मूलं अङ्गान्तरविरहितेन अगुक्तद्रवेण अ केवलमूलजातीयं कल्केन तथा केवलया वज्रा वा अङ्गान्तरविरहितेन अगुक्तद्रवेण अ केवलतानाजातीयं कल्केनेत्यर्थः, पक्त्वस्य स्नेहस्य द्वादशाङ्गं पाकः संपादनीयः, न तु त्वगाद्यङ्गान्तरयुक्तेन वज्रीमूलेन पक्त्वस्य, तस्य क्षीरे विरात्रमित्यादि परिभाषणैव लब्धत्वात् इति । एकाहं त्रीहिमांसाणां मिति केवलत्रीहिमांसकायाभ्यां पक्त्वस्य स्नेहस्य पाकः एकाहनेव संपादनीयः, न तु कायान्तरसंस्काराभ्यां, केवलत्रीहिमांसकाययोर्व्युत्पद्योर्दोषलत्वात्, तदुक्तं “केवले त्रीहिजत्वङ्गकायो व्युत्सु दोषलः । स्यात्ततो वर्जयेद्द्व्यष्टमन्मन्मिन्नो न दोषलः ॥ इति ॥ २७—३० ॥

अम्बुकाथेति ।—अम्बुकाथेत्यादि परिभाषार्थं अरकमुसुतविलङ्घत्वात् केचिद्-

अस्यार्थः ।—केवलजलसिद्धे स्नेहमात्रे कल्कस्य चतुर्धांशं स्नेहापेक्षया  
देयम् । एवं क्रमात् केवलं तु कायसिद्धे कल्कस्य षडंशं देयम् । रसेरिति  
स्वरसेः सिद्धे कल्कस्याष्टांशं देयमित्यर्थः ।

दुग्धे दध्नि रसे तन्ने कल्का देयोऽष्टमांशिकः ।

कल्कस्य सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

अस्यार्थः ।—केवलदुग्धसिद्धे तैलादौ स्नेहादष्टांशिकः कल्कः कार्यः,  
एवं दध्नि, \* रसे इति स्वरसे, तन्ने इति पारिभाषिकतन्ने, सर्वत्राष्टांशिकः  
कल्को देयः । एतेषां घनत्वेन कदाचित् सम्यक् पाकाभावत्वात् सर्वस्मि-  
न् अपि चतुर्गुणं जलं दापयन्ति वृद्धाः ।

द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि ।

तत्र स्नेहसमान्याहुयथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३३ ॥

पञ्चादीनीति पञ्चषट्सप्ताष्टकानि तदतिरिक्तान्यपि यत्र स्नेहे द्रवाणि  
दीयानि स्युः, तत्रेमानि स्नेहतुल्यानि भवन्ति । यथापूर्वमिति प्रतिलोमरीत्या  
पूर्वं पूर्वं चतुःप्रभृत्येकपर्यन्तं प्रत्येकं स्नेहाच्चतुर्गुणं द्रवं देयमिति केचिदाहुः ।  
अन्ये तु एकादिचतुःपर्यन्तं मिलित्वा चतुर्गुणं ददते, तेनैकस्यापि चातुर्गुण्यं  
द्वयोरपि त्रयाणामपि चतुर्णामपि चातुर्गुण्यमिति ; यथा मध्वेश्वरश्चक्र-  
शेषटीकायामाह—गुडूचोतैले गुडूचीकाथं द्वादशशरावं दुग्धं शराव-  
चतुष्टयम् इति मिलित्वा षोडशशरावं टीकायां लिखति । एवं द्राक्षारसस्य  
षोडशशरावं दत्त्वा एकस्य द्रवस्य चतुर्गुणं लिखति । एवं यष्टिमधुगान्धारि-  
फलयोर्निलितयोः चतुःषष्टिपलं गृहीत्वा पाकार्थं चतुःषष्टिशरावे  
धानीये पक्ताऽवशिष्टषोडशशरावं दत्त्वा तैलत्रयं पचति ; यथा—“गुडूची-

गार्जनाहुः । रसे स्वरसे । तन्ने चतुर्धांशजलेनालोचित इत्यर्थः, “तन्ने पादजले  
प्रीकम्” इत्युक्तत्वात् ॥ ३१।३२ ॥

द्रवाणीति ।—व्याख्यातोऽयं प्राक् ॥ ३३ ॥

\* “रसे इति स्वरसे” इत्यत्र “रसे इति स्वरूपे” इति पाठे—स्वरूपे स्वरसात्मके  
स्नेहसिद्धे रसे, न तु पारिभाषिकमांसरसात्मके रसे इत्यर्थः । तन्ने इति पारिभाषिकतन्ने  
“तन्ने पादजले प्रीकम्” इत्यादिरूपे इत्यर्थः, न तु तन्नेषामन्ते ।

काथद्रव्याभ्यां तैलं द्राक्षारसेन वा । सिद्धं मधुककाप्रसृत्य-रसैर्वा वातरक्तं  
नुत् ॥” इति ।

द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेत् यदि ।

तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलञ्चात्र चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥

काथेन केवलेनैव पाको यत्रैरितः कश्चित् ।

काथद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ ३५ ॥

कल्कद्वेनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ॥ ३६ ॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ।

स्नेहात् स्नेहाष्टमांशस्तु पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ३७ ॥

अथ सैहनिष्पत्तिरक्षणमाह ।—

स्नेहकल्का यदाऽङ्गुल्या कर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।

बङ्गौ क्षिमे च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ।

गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥

फेनोऽतिमात्रं तैलस्य श्रेष्ठं घृतवदादिशेत् ॥ ३९ ॥

द्रव्येति ।—द्रव्येण कल्कद्रव्येणेत्यर्थः । “द्रवेण” इति पाठान्तरमसाक्षः ।  
द्रव्येण तथा काथेनैवादि परिभाषादयं शरकसुशुतादिभिरगृहीतत्वानानार्थत्वात् ।  
अङ्गुलैरवहतम् ॥ ३४—३७ ॥

अथ स्नेहस्य पाकसिद्धिरक्षणमाह, स्नेहकल्का इति ।—“तदा सिद्धिं विनि-  
र्दिशेत्” इत्यन्तरं । “क्षिमे कथनो न करोति शब्दं नाङ्गुलैषो विषयोऽपि नास्ति ।  
संकर्त्तितो वर्त्तिमुपेत्य कल्को निष्पत्तिरवा घृततैलयोश्च ॥” इत्यधिकः पाठः  
कश्चित् दृश्यते । तत्र कथनो अग्नौ । विषयः घृतिस्यशब्दपिच्छिक इत्यर्थः । उपरमे  
निवृत्तौ । गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ यस्य स्नेहस्य यादृशः गन्धः, यादृशः वर्णः,  
यादृशो रसः, प्रसिद्धः, तेषां निष्पत्तौ इत्यर्थः । एतन्नक्षत्रान्तु निष्पन्नस्य घृतस्य ।  
स्नेहस्य विशेषलक्षणमाह, फेन इति ।—निष्पत्ते तु घृतं फेनविरतिर्जायते, तैले तु  
अपिमात्रं फेनोद्गमो भवति, भवतु घृतपाकलक्षणवदिति विद्वद्भिः ॥ ३८, ३९ ॥

चारस्य पावसिद्धिलक्षणम् ।—

एवमेव चारतीयं साधयेत्तु क्षतादिषु ।

फेनोदयस्य निष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ॥

स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणम् ॥ ४० ॥

त्रिविधः स्नेहपाकः, तेषां लक्षणानि च ।—

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।

ईषत्सरसकल्कसु स्नेहपाको भवेन्मृदुः ॥ ४१ ॥

मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्का नौरसकामलः ।

ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत् खरः ॥ ४२ ॥

तदूर्ध्वं खरपाकः स्यात् दाहकन्निष्प्रयोजनः ।

आमपाकश्च निर्वीर्यो वज्रिमान्द्यकरो गुरुः ॥ ४३ ॥

क्षतादिषु प्रतिसारणीयचारपाकलक्षणमाह, एवमिति ।—“फेनोदयस्य” इत्यत्र “फेनोदमेऽयम्” इति पाठान्तरम् ॥ ४० ॥

मृदादिभेदेन त्रिविधस्य पाकस्य लक्षणमाह, स्नेहपाक इति ।—“कल्को नौरस-  
कोमलः” इत्यत्र “कल्को नौरसकोमले” इति पाठान्तरम् । “खरपाकः” इत्यत्र  
“दग्धपाकः” इति पाठः साधुः । आमपाकः असम्पूर्णपाकः । “वज्रिमान्द्यकरो  
गुरुः” इत्यन्तरं—“वर्तिवत् स्नेहकल्कः स्वादुक्त्या च विवर्तितः । शब्द-  
घोरोऽग्निनिक्षिपः स्नेहः विहो भवेत्तदा ॥ यदा फेनोदमेऽयम् फेनघोनेऽयम् सर्पिषि ।  
वर्णमन्तराद्येतौ स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ॥” इत्यधिकः पाठः कश्चित् पुस्तके ।  
स्नेहपाकविज्ञानमुक्तं सुश्रुतेन यथा—“अत ऊर्ध्वं स्नेहपाककममृपदेत्यामः, स च  
त्रिविधः, तद्वयथा—मृदुर्मध्यः खर इति । तत्र स्नेहोषधिविक्रमात् यत्र भेषजं  
स मृदुरिति । मधुच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं, स मध्यमः । कृष्णमध-  
सन्नमीषद्विशदं चिकृण्वत्तु यत्र भेषजं, स खर इति । अत ऊर्ध्वं दग्धस्नेहो भवति, तं  
पुनः साधु साधयेत् । तत्र पानाभ्यवहारयोर्मृदुः, नखाभ्यञ्जनयोर्मध्यमः, वास्तविक-  
पूरणयोस्तु खर इति । चरकेऽप्युक्तं—“स्नेहपाकस्त्रिधा ज्ञेयो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।  
तुल्यः कल्केन निर्यातो भेषजाना मृदुः सु १ ॥ शम्पाक इव निर्यातो मध्ये  
दर्वी विमुञ्चति । शीर्षभाणे तु निर्यासि वक्त्रं ताने खरलया ॥ खरोऽभ्यङ्गे  
स्त्रुतः पाको मध्यो नख किमपि नृ ॥ मृदुपाकस्तु पानादे वक्षो वाऽपि निर्यातयेत् ॥”

विषयविशेषे सहादपाकविधिः ।—

नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ।

अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।—

मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यङ्गे वस्तौ पाने च मध्यमः ।

तुल्ये कल्के च निर्यासे भेषजानां मृदुः स्मृतः ॥ ४५ ॥

शम्पाक इव निर्यासो मध्या दर्वी विमुञ्चति ।

शीर्यमाणे तु निर्यासे वक्ष्यमाने खरः स्मृतः ॥ ४६ ॥

सहादिपाकस्य प्रशक्तादिनिर्देशः ।—

सर्वेषामिह द्रव्याणां मध्यपाकः प्रशस्यते ।

वरं पाको मृदुः कार्यः तथाऽपि न खरो मतः ॥

किञ्चिद्दीर्यं मृदुर्धत्ते तज्जहाति खरः पुनः ॥ ४७ ॥

अन्यत्पाकलक्षणमाह ।—

वर्तिवत् स्नेहकल्कः स्यात् यदाऽङ्गुल्या विवर्तितः ।

शब्दहीनाऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धा भवेत्तदा ॥ ४८ ॥

यदा फेनोद्गमस्तेले फेनहीनस्तु सर्पिषि ।

वर्णगन्धरसोत्पत्तौ स्नेहमिद्विस्तदा भवेत् ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।—

व्युष्य व्युष्य पाके स्नेहादीनां गुणवैशिष्ट्यानिर्देशः ।—

घृत-तैल-गुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् ।

व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥ ५० ॥

इति । अन्यत्राप्युक्तं—“स्नेहस्य विविधः पाको मृदुमध्यः खरस्तथा । स्नेहपाको भवेत् कल्के मृदुरङ्गुलिलेपनि ॥ न गृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्यमाणे खरः स्मृतः ॥ नस्ये मृदुर्भवेत् किट्टं पेये किट्टस्तु मध्यमम् । नातिखरं पचेत् वस्तौ खर-मध्यज्जने पचेत् ॥” इति । शम्पाकः पारश्वरा, तस्य मज्जा । “शम्पाकः” इत्यत्र “संघावः” इति पाठान्तरम् । शीर्यमाणे अन्यमाने ॥ ४१—४९ ॥

एकस्मिन्नेव दिने घृतादीनां पाकशेषस्य अकसंव्यतामाह, घृतेत्यादि ।—व्युषिताः स्निग्धविताः, कतिविद्धिमानि दणविरामा इत्यर्थः ॥ ५०-॥

व्युष्ट्रीक्षादिकाथस्य सदोषत्वनिर्देशः ।—

केवलं त्रीहजन्वङ्ग-काथो व्युष्टसु दोषलः ॥ ५१ ॥

अथ गुडपाकलक्षणमाह ।—

यदा दर्वीप्रलेपः स्यात् यदा वा तन्तुलोभवेत् ।

तोयपूर्णे च पात्रे तु क्षिप्तो न भवति गुडः ॥ ५२ ॥

क्षिप्तस्तु निश्चलास्तष्ठेत् पाततस्तु न शीर्यति ।

एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः ॥ ५३ ॥

सुखमर्दः सुखस्पर्शी गन्धवर्णरमान्वितः ।

पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ ५४ ॥

गुग्गुलुपाकलक्षणम् ।—

गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सवन्धस्तु विशेषतः ॥ ५५ ॥

द्रव्यविशेषे व्युषितकरणस्य दोषमाह, केवलमिति ।—त्रीहजन्वङ्गकाथः त्रीहोर्णां साधनसूरादीनां जन्तुङ्गानां क्वागादिमांसादीनां, काथः व्युष्टः पर्युषितः । “दोषलः” इत्यनन्तरं “घृततेजगुडादीन् साधयेद्वैकवासरे । प्रकुर्वन्त्युषितां श्लेते विधीयात् गुण-सचयम् ॥” इत्यधिकः पाठः कश्चित् ॥ ५१ ॥

अथ गुडपाकलक्षणमाह, यदेति ।—पाककाले यदा दर्वीं लिप्यति, तन्तुलोभवति शर्करादिप्राक् तन्तुवत् सानुबन्धीभवतीत्यर्थः । न भवति तोयोपरि भवमानो न वर्तते इत्यर्थः । न शीर्यति परितः, क्षीर्णोऽमुत इव न प्रसरतीत्यर्थः । मुद्रांश्च शङ्कुलीश्लेखाम् ॥ ५२—५४ ॥

गुग्गुलुपाकलक्षणमिति श्रुतिः, गुडवदिति ।—सवन्धः पिण्डाकारत्वेन गुडिकादि-रूपेण वा बन्धनाहः इत्यर्थः । सुपाको गुडः जाटद्वयो भवति, गुग्गुलस्तु पिण्डवत् बन्धनयोग्यो भवति इति गुग्गुलुगुडयोः पाकत्रैजिह्वम् । “सवन्धस्तु” इत्यत्र “सुगन्धस्तु” “रसो गन्धो” इति च पाठान्तरद्वयम् । “गुडवद्गुग्गुलोः” इत्यस्य “रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्यात् जाटमर्दनात्” इति पूर्वाहः केनाञ्चित् पठ्यते ॥ ५५ ॥



गुग्गुलीमन्त्रमात्रनिर्देशः ।—

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु द्वादशाष्टचतुष्टयैः ।

माषकेर्गुग्गुलीमन्त्रां व्याधिं वौक्ता प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥

अथ लोहशोधनादिपरिभाषामाह ।—

(यदाहुस्त्रिविक्रमादयः लोहप्रदीपे) —

शुद्धार्थं त्रिफला लौहात् कर्तव्या द्विगुणा सदा ।

चतुर्गुणं फलात्तोयमर्द्धभागावशेषितम् ॥ ५७ ॥

एष एव विधिर्नित्यं चालनेऽपि प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

बधार्थं त्रिफला ग्राह्या लौहान्नित्यं चतुर्गुणा ।

तोयमष्टगुणं तत्र चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५९ ॥

भानुपाकार्थमिच्छन्ति त्रिफलामयमा समाम् ।

मलिलं द्विगुणं तत्र चतुर्भागावशेषितम् ॥ ६० ॥

पाच्यद्रव्यात् तु पाकार्थं त्रिफला त्रिगुणेरिता ।

स्यात् षोडशगुणं तोयमष्टभागावशेषितम् ॥ ६१ ॥

अन्यानि यानि वस्तूनि योक्तव्यानि पुटादिषु ।

तानि लौहसमान्याहुर्जलं प्रागेव कौर्त्तितम् ॥ ६२ ॥

गुग्गुलीमन्त्रमाह, श्रेष्ठेत्यादि ।—श्रेष्ठमध्यमहीनेषु उत्तममध्यमाधमबलानल-  
विशिष्टेषु पुरुषेषु इत्यर्थः । द्वादशाष्टचतुष्टयैरिति क्रमात् बोद्धव्यम् ॥ ५६ ॥

इदानीं लौहमारणार्थं तस्य शोधनादिविधिमाह, शुद्धार्थमिति ।—शुद्धार्थं  
लोहशोधनार्थम् । फलात् त्रिफलात् । चालनेऽपि घोटकरणेऽपि, एष एव विधिः  
शोधनार्थं त्रिफलायाः कायकरणस्य यो विधिः, स एव विधिः, शोधनानन्तरं लौह-  
प्रचालने कर्तव्ये पूर्वविधिना त्रिफलायाः कायं कृत्वा तेन कायेन प्रचालये-  
दित्यर्थः । बधार्थं मारणार्थं, शोधनचालनानन्तरं मारणकार्यार्थमित्यर्थः । भानु-  
पाकार्थं सूर्यकिरणे शोषणार्थं, लौहसमां त्रिफलां द्विगुणजलेन काययित्वा पाटाव-  
ज्ञपं गृह्णीयान्, तस्मिन् काये लौहं प्रक्षिप्य कायशीघ्रं यावत् सूर्यसन्तापे  
स्थापयेत् इति । पाच्यद्रव्यात् लौहादित्यर्थः । पाकार्थं स्थालीपाकार्थम् । अन्यानि  
यानि वस्तूनि लौहप्रदीपोक्तानि त्रिफलाव्यतिरिक्तानि यानि पेषणान्द्रव्याणीत्यर्थः ।  
पुटादिषु लौहस्य पुटनादिकर्मसु । जलं प्रागेव कौर्त्तितं “मृदो चतुर्गुणं देयं

लभ्यते स्वरसो येषां तेषां काथोऽत्र नैष्यते ।

त्रिफलाव्यतिरेकेण मतमेतत् पतञ्जलिः ॥ ६३ ॥

एष एव विधिर्नित्यं चालनेऽपि प्रशस्यते ॥ ६४ ॥

अश्वशोधनपरिभाषा ।—

लौहवत् त्रिफला व्योम्नि त्रिफलावत् पयो मतम् ।

प्राक्कीर्तितं जलञ्चात्र मृदुमध्यादभेदतः ॥ ६५ ॥

काथ्यद्रव्याणां त्रैविध्यानिर्देशः ।—

मृदुमध्यकठारत्वात् काथ्यद्रव्यं त्रिधा मतम् ।

काथ्यद्रव्यानुसारं देयं स्थाप्यं जलं त्रिधा ॥ ६६ ॥

पतञ्जलिश्चाह सामान्यपरिभाषां लौहमारणार्थम् ।—

द्विगुणा त्रिफला लौहात् फलात् षोडशिकं जलम् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु मारणे जलमिष्यते ॥ ६७ ॥

समा च त्रिफला ग्राह्या जलञ्चाष्टगुणं तथा ।

बधार्थे स्थापयेत् तोयं तस्याहं वस्त्रशोधितम् ॥ ६८ ॥

बधार्थेन समं ग्राह्यं पाकार्यञ्च समं फलम् ।

कठिनेऽष्टगुणं तथा” इत्यादिना पूर्वोक्तम् । एष एव विधिर्नित्यं चालनेऽपि प्रशस्यते लौहस्य प्रचालनकर्मण्यपि त्रिफलाव्यतिरेकानां येषां स्वरसो लभ्यते, तेषां स्वरसेवैव प्रचालनं कर्तव्यं, न तु काष्ठेन, त्रिफलायास्तु काष्ठेनैव कर्तव्यम् इति ॥ ६७—६४ ॥

इदानीं लौहशोधनपरिभाषामपि प्रतिदिशति, लौहवदिति ।—व्योम्नि अग्नेः । पयः जलम् । प्राक् कीर्तितं “मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं तथा” इत्यादिना प्रागुक्तम् । अथमर्थः,—अश्वमारणे कर्तव्ये लौहशोधनविधिवत् अस्मात् द्विगुणं त्रिफला मृद्वीला चतुर्गुणजलेन पक्वा च अर्द्धावशेषं कुर्व्यात्, तेनैव अश्वशोधयेत्, एव लौहवत् चालनादिकमपि कुर्व्यात् । एव पुडादिकमर्थं काष्ठे कर्तव्ये काथ्यद्रव्यस्य मृदुमध्यादभेदेन जलमपि चतुर्गुणादिकं दातव्यमिति ॥ ६५ ६६ ॥

लौहमारणे पतञ्जलितत्वाद्, द्विगुणेति ।—“फलात् षोडशिकं जलम्” इत्यत्र “षोडशेत् षोडशिकं जलम्” इति पादान्तरम् । तथाप्येन समं ग्राह्यं पाकार्यञ्च समं

अष्टभागावशिष्टञ्च पाकार्यं जलमिष्यते ॥

एवं जलं फलं प्रोक्तं यथासङ्गेन योजयेत् ॥ ६९ ॥

अथ लोहपाकलक्षणमाह, तदुक्तं पतञ्जलिना ।—

तावत्क्षौहं पचेद्द्वयो यावद्वस्त्रेण गालितम् ।

समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः ॥ ७० ॥

अन्यच्च ।—

अङ्गुलिभ्यां निष्टृष्टन्तु यदा चूर्णत्वमागतम् ।

तदा सिद्धं विजानीयात्क्षौहं लोहविदां वरः ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।—

अञ्जनाभं घनं स्निग्धं श्लक्ष्णभूतमलेपनम् ।

अक्षिन्नमन्धसि क्षिप्तं सम्यक् पक्वस्य लक्षणम् ॥ ७२ ॥

असम्यक्पक्वलोहलक्षणम् ।—

मन्दमाहुरथो लोहमलम्बाखिललक्षणम् ।

फलं—वशाद्येव पाकार्यमपि समं लोहसमं फलं त्रेफलं याज्यमित्यर्थः, अथाहः समं-शब्दः तद्वदित्यर्थे अन्यथं, द्वितीयः समं-शब्दः समानार्थे प्रयोज्यः । “पाकार्यञ्च समं फलम्” इत्यत्र “पाकार्यञ्च जलं फलम्” इति पाठकल्पना सुखबोधानुकूला । यथासङ्गेन लोहमानानुसारित्यर्थः ॥ ६९—६९ ॥

लोहस्य पाकसिद्धिलक्षणमाह, तावदिति ।—समुद्रम् अङ्गुलीरेखायुक्तम्, सन्धिभिः बस्त्रच्छिद्रेरित्यर्थः । अयमर्थः,—बस्त्रोपरि संस्थाप्य अङ्गुलीभिर्घर्षणे कृते यदा अङ्गुलीरेखा लोहे मुद्रिता भवेत्, तथा बस्त्ररन्ध्रं लिप्ता तिष्ठेत्, न निःसरत्यपि पतेत्, तदा सुपक्व लोहमिति विजानीयात् इति । “सन्धिभिः” इत्यञ्च “लन्धिभिः” इति पाठान्तरम् । “सिद्धम्” इत्यत्र “सिद्धिम्” इति पाठः नाद्यसङ्गतः । अञ्जनाभं लज्जलाभं, घनं गाढं, गाढलज्जलाभमित्यर्थः । श्लक्ष्णभूतं सुचिकणं, सुखस्पर्शमिति यावत् । “श्लक्ष्णभूतम्” इत्यत्र “श्लक्ष्णमूलम्” इति पाठान्तरम् । अलेपनं नाङ्गुलिखिलित्यर्थः । अक्षिन्नमन्धसि क्षिप्तं जले त्रिचिपि सत् न क्षियति, उपरि प्रवते इत्यर्थः, वारितरमिति यावत् ॥ ७०—७२ ॥

क्षामपक्व-खरपक्वयोर्लक्षणमाह, मन्दमिति ।—मन्दं, हीनपक्वमित्यर्थः ।

अतिपाकिन तज्ज्ञेयं खरमुज्झितलक्षणम् ॥ ७३ ॥

अमोघ-तत्वे चोक्तं—

विविधपाकलक्षणम् ।—

पाकस्तु द्विविधः प्राक्तो मृदुमध्यमतीक्ष्णकः ।

त्रैविध्यात् सर्वधातूनां पित्तानिलकफात्मनाम् ॥ ७४ ॥

दर्वीमाश्लि यने यत्तत् स्त्रैरं खनति वा न वा ।

मृदुपाकं विजानीयात् पित्ते तद्दीक्ष्य योजयेत् ॥ ७५ ॥

सिक्तापुञ्जोपमं यत् तु मूषिकेण समन्वितम् ।

तदयः खरपाकं स्यात् श्लेष्मण्येव प्रकीर्तितम् ॥ ७६ ॥

एकैकगुणयोगित्वान्न तदिच्छन्ति तद्दिदः ।

सर्वप्रकृतिसेव्यत्वान्मध्यमं बहुपूजितम् ॥ ७७ ॥

गुडादिसहितलोहपाकलक्षणम् ।—

गुडादिः प्रविशेत् यत्र तत्र पाकोऽस्य मुद्रया ॥ ७८ ॥

अथ भावनाविधिः ।—

द्रवेण यावता द्रव्यमेकाभूयार्द्रतां व्रजेत् ।

तावत् प्रमाणं कर्तव्यं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ ७९ ॥

अलस्याखिललक्षणम् असञ्जातपूर्वोक्ताञ्जनाभादिलक्षणसमुद्भूतित्यर्थः । उज्झित-  
लक्षणम् अतिक्ताल्लक्षणं, सम्यक्पाकलक्षणे सञ्जातेऽपि यदि पाकात् न  
विरमति तदा अतिक्ताल्लक्षणत्वात् खरपक्वं भवतीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

पाकविधौ अनोवन्त्वात्तत्रचनमाह, पाक इति ।—सर्वधातूनां लोहाद्याद-  
प्राक्काहेषानूनाम् । पित्तानिलकफात्मना, पुषानिति शेषः, पित्तानिलकफात्मनै-  
मुंसां त्रैविध्यात् सर्वधातूनां पाकस्तु मृदुमध्यमतीक्ष्णसत्त्वविधेः प्रोक्तः इत्यन्वयः ।  
सिक्तापुञ्जोपमं बालुकाराशिवदृश्यम् । मूषिकेण समन्विनं मूषिकोरुद्धातवृत्तिका-  
तुल्यम् । “सिक्तापुञ्जोपमं यत् मूषिकेण समन्विनम्” इत्यत्र “सिक्ता” भवेत् यत्  
वा मूषिकात्करसन्निभम् इति पाठलक्षणा मुखोपधानकूला । “सिक्ता” इत्यत्र  
“वित्ता” इति चकटोकाया शिवदासधृतपाठः । सर्वप्रकृतिसेव्यत्वात् वातादि-  
विविधप्रकृतिसेव्यत्वात् ॥ ७४—७८ ॥

सृष्टेदानौषधानां भागनाविधिमाह, द्रवेणेति ।—द्रव्य चूर्णकल्कादिभ्यः

अत्र जलं पाकार्थमष्टगुणं देयं ग्रन्थान्तरदर्शनात् । भाव्यद्रव्यसमं  
काथ्यं काथ्यादष्टगुणं जलम्” इति पञ्चाङ्गिखितेन । केचित् तु अनुक्त-  
फलपरिमाणे चतुर्गुणं जलं दत्त्वा द्रवत्वादिविदस्त्वु (१) अष्टांशशेषं गृह्णन्ति ।

दिवा दिवाऽऽनपे शुष्क रात्रौ रात्रौ च वासयेत् ।

स्रज्ज्वलं चूर्णीकृतं द्रव्यं समाह्वं भावनाविधिः ॥ ८० ॥

ग्रन्थान्तरे च—

भावनाद्यं काथपात्रविधिः ।—

भाव्यद्रव्यसमं काथ्यं काथ्यादष्टगुणं जलम् ।

अष्टांशशेषितः काथो भाव्यानां तेन भावना ॥ ८१ ॥

अथ चारोदकमाह ।—

पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम् ।

सावयेत् षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ ८२ ॥

चारात् षड्गुणं जलं दत्त्वा वस्त्रेण दोलायत्नं विधाय तदधः पात्रं  
घातयित्वा चारोदकं ग्राह्यम् । एवमेकविंशतिवारं पुनःपुनः सावयित्वा  
ग्राह्यम् । अथवा केचिदाहुः चाराच्चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्धावशिष्टे (१)  
ज्ञावयित्वा तज्जलं ग्राह्यम् ।

अथ विरुक्तद्रव्यग्रहणम् ।—

घृततैलादियोगे च यद्द्रव्यं पुनरुच्यते ।

ज्ञातव्यं तदिहाचार्यैर्भागतो द्विगुणेन हि ॥ ८३ ॥

आदिशब्देन चूर्णवटिकालिहप्रभृतिषु ज्ञेयमिति ।

अथ चूर्णस्य पाकनिषेधमाह ।—

प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरिचूर्णस्य तेन हि ।

श्लेषद्रव्यम् । तावत्परमाण्वनित्यं द्रवमिति शेषः । वासयेत् स्थापयेदित्यर्थः ।  
“वासयेत्” इत्यत्र “भावेयेत्” इति पाठान्तरमवाप्तम् । “श्रज्ज्वलम्” इत्यत्र “शुष्कम्”  
इति पाठान्तरम् ॥ ७१।८० ॥

अथ काथेन भावनाविधौ काथ्यादीनां परिमाणमाह, भावयेति ।—अनेकः  
विधिना काथं कृत्वा तेन एकदिनं भावयितव्यम्, एवं समाह्वम् ॥ ८१ ॥

आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते ॥ ८४ ॥

प्राय इति प्रचुर्येण, प्रचुरार्थे इति । आसन्नपाके इति उपस्थित-  
पाके, न तु पाकमापन्ने, तथा सति प्रचुरचूर्णानां प्रविशो न स्यादित्यर्थः ।  
स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते, कटुष्णदशायां प्रक्षेप इति शेषः ।

चूर्णादो गुडस्य मात्रानिर्देशः ।—

चूर्णे चूर्णसमो ज्ञेयो मोदके द्विगुणो गुडः ॥ ८५ ॥

पलशब्देन निर्देशे मात्रायङ्गविधिः ।—

सङ्ख्या पलानां शतशः पलं प्रश्रूयते यतः ।

तदा चाकृतिमानेन तेषान्तु ग्रहणं विदुः ॥ ८६ ॥

आकृतिमानेनेति यदनुरूपसङ्ख्या तेषां तथा तेषां द्रव्याणां ग्रहणं  
विदुः, एतेन सङ्ख्यादीनां द्वैगुण्यं नानुष्ठेयं, “पलोञ्जखागते माने न द्वैगुण्य-  
मिच्छेयते” इति वचनात् ।

अथानुपानविधिमाह—

अनुपानाकरणे दोषनिर्देशः ।—

स्थिरतां गतमक्लिन्नमन्नमद्रवपायिनः ।

भवत्याबाधजनकमनुपानमतः पिबेत् ॥ ८७ ॥

आबाधमिति आ सम्यक् प्रकारेण, बाधजनकं पीडाजनकमित्यर्थः ।

अनुपानस्य हेतुनिर्देशः ।—

यथा जलगतं तैलं क्षणेनैव प्रसर्पति ।

पानोपचारविधिमाह, पानीय इति ।—पानीय इत्यत्र चार इति  
शेषः ॥ ८२—८४ ॥

चूर्णादो गुडस्य परिमाणं निर्दिशति, चूर्णे इत्यादि ।—चूर्णसम इत्यत्र गुड इति  
शेषः । मोदके द्विगुणो गुड इत्यत्र सर्वचूर्णात् द्विगुण इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

सङ्ख्याति ।—यतः पलानां सङ्ख्या शतशः बहुवारान्, सर्ववेवेत्यर्थः, पलं प्रश्रूयते,  
पलमेव श्रूयते, न प्रस्थादिवत् द्वैगुण्यनेत्यर्थः, यथा—यतः शतशः पलानां  
शतपलानामपीत्यर्थः, सङ्ख्या पल पलमेवेत्यर्थः, प्रश्रूयते, न तु प्रस्थादिकादिवत्  
द्वैगुण्यनेत्यर्थः, ततः तेषां पलानां आकृतिमानेन स्वरूपेण, पलमानेनैव, न तु  
द्वैगुण्यनेत्यर्थः, ग्रहणं विदुः ॥ ८६ ॥

तथा भैषज्यमङ्गेषु प्रमर्षव्यनुपानतः ॥ ८८ ॥

अनुपानगुणाः ।—

रोचनं वृद्धं वृथं दोषघ्न वातभेदनम् ।  
 तर्पणं मार्दवकरं अमल्लमङ्गरं परम् ॥ ८९ ॥  
 दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम् ।  
 रसवर्णकरञ्चापि अनुपानं मदीच्यते ॥ ९० ॥  
 वातापिर्भक्षितो येन अगस्त्येन द्विजोत्तम ! ।  
 अनुपानं कृतं तेन का कथा सर्वदेहिनाम् ॥ ९१ ॥  
 अनुपानं करोत्युज्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढां गतिम् ।  
 अन्नसङ्घातश्रेयस्य-विकृतिजाराणामि च ॥ ९२ ॥  
 व्याप्तिं शरीरव्यापनम् । विकृतिर्विकृतिता इत्यर्थः ॥

दोषभेदे अनुपाननिर्देशः ।—

स्निग्धोष्णं भारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम् ।  
 कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसं पथः ॥ ९३ ॥

स्नेहपाने अनुपानविशेषः ।—

उष्णीदकानुपानञ्च स्नेहानामथ शस्यते ।  
 ऋते भक्ष्यातकस्नेहात् तत्र तोयं सुशीतलम् ॥ ९४ ॥

अनुपानस्य कर्तव्यतायां युक्तिमाह, स्थिरतामिति ।—स्थिरतां गतं यथाभुक्तं स्थितमित्यर्थः ॥ ८६।८८ ॥

अनुपानस्य गुणमाह, रोचनमिति ।—वृद्धं बर्द्धनं, पुष्टिजननमित्यर्थः । “दोषघ्नं वातभेदनम्” इत्यत्र “दोषसङ्घातभेदनं” तथा “रसवर्णकरञ्चापि” इत्यत्र “वर्णं वर्णकरं सम्यक्” इति सुश्रुते पाठः । “रसवर्णकरञ्चापि अनुपानम्” अत्रामन्विस्तु क्कान्दसः । अनुपानस्यावश्यकर्तव्यतायां दृष्टान्तमाह, वातापिरिति ।—वातापिः कश्चिदसुरविशेषः । उज्जां बलम् । विकृतिः क्लिबोभाषः ॥ ८९—९२ ॥

कश्चिन् दोषे<sup>१</sup> कौटुम्-रसगुणवद्भक्ष्यमनुपेयमित्याह, स्निग्धोष्णमिति ।—“पथः” इत्यत्र “परम्” इति पाठान्तरम् ॥ ९३।९४ ॥

अन्यच्च ।—

भक्षाततौवरं स्नेहे शीतमेव जलं पिबेत् ।

जलमुष्णं घृते पेयं यष्पस्तेलेऽनुशस्यते ॥

वसामज्ज्वास्तु मण्डः स्यात् सर्वेषु मथाम्बु वा ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।—

सामान्यतोऽनुपाननिर्देशः ।—

शीतोष्णतोयासवमद्ययूष-फलान्मृधान्यान्मृपयोरसानाम् ।

यस्यानुपानन्तु भवेद्वितं यत्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।—

यूषो मांसरसो वाऽपि शालिमुद्गादिभोजिनाम् ।

मांसादौनां चानुपानं धान्यान्मृदधिमस्तु वा ॥ ८७ ॥

अथानुपानमात्रमाह ।—

अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ।

पलद्वयन्त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ ८८ ॥

गुडक्षौद्रसितादौनां पलाईश्च विशेषतः ॥ ८९ ॥

पलमत्र सौश्रुतम् । \*

अनुपानविषये मतान्तरमाह, भक्षातेति ।—भक्षाततौवरं स्नेहे भक्षातकफल-  
साधिते तुररकसाधिते च स्नेहे इत्यर्थः । तत्र तुररकस्य विज्ञानं यद्योक्तं  
सुश्रुतसंहितायां—“पत्रेस्तु केशराकारैः कलायसदृशैः फलैः । इत्यस्तुवरको नाम  
यश्चिन्मार्णवतोरजः ॥ आरुन्धरं तौवरकं कषाय कटुपाकि च । उष्णं क्षमिज्वरा-  
नाह मोहीदावर्चनाशनम् ॥” इति । “तेले” इत्यत्र “लेहे” इति पाठान्तर-  
कषाधु, चरकाद्यसम्मतत्वात् । शीतोष्णशब्दौ तोयेत्यनेनान्वीयेते, तेन शीततोयमुष्ण-  
तोयश्चेत्यर्थः । फलान्मृदं वोजपूरादिकम् । “फलान्मृ” इत्यत्र “फलान्मु” इति पाठः  
सुश्रुतविरुद्धः । धान्यान्मृ काञ्जिकम् । प्रकृतिपर्यालोचनया यस्य एतेषु  
स्थितमनुबुध्यते, तस्यै तदेव यद्यपिमात्रया प्रदातव्यमित्यर्थः । “यूषः” इत्यत्र “पयः”  
कृष्ण “मांसादौनाम्” इत्यत्र “माषादेः” इति पाठान्तरं सुश्रुते ॥ ८५—८७ ॥

दोषभेदेनानुपानमात्रमाह—अनुपानमिति ॥ ८८-८९ ॥

\* पलमत्र सौश्रुतमिति पञ्चरत्निमाषासकमित्यर्थः ।



व्यक्तिभेदे सावानिर्देशः ।—

दीप्ताग्निगो महाकायाः स्नेहसात्म्या महाबलाः ।

विसर्पोन्मादगुल्मात्ताः सर्पदंष्ट्राविषादिताः ॥

ज्येष्ठां मात्रां पिबेयुस्ते पलान्यष्टौ विशेषतः ॥ १०० ॥

अथ लौहानुपानमाह ।—

माहिषं गव्यमाजञ्च पयो ग्राह्यं त्रिधाऽयसि ।

माहिषं भक्षके देयमाजं क्षीरं पुनर्मतम् ॥ १०१ ॥

कोष्ठदोषे कफे श्वासे कासे चापि नवज्वरे ।

गव्यमन्यत्र सर्वत्र समवारिप्रसाधितम् ॥ १०२ ॥

सर्वत्र गव्यमेवेति मतमाह पतञ्जलिः ।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहात् षष्टिगुणं पयः ॥ १०३ ॥

यदा तु वर्द्धितं क्षीरं तदाऽर्द्धं भोजने पिबेत् ।

दद्यात् समशने तस्य योऽत्यर्थं क्षीणप्रावकः ॥ १०४ ॥

अथानुपानविशेषमाह ।—

अनुपानं हिमं कारि यवगोधूमयोर्द्वितम् ।

दीप्ताग्निगोदीनां विशेषविधिमाह, दीप्ताग्निगो शक्तिः—ज्येष्ठां मात्रां सावानिर्देशः ॥ १०० ॥

अथ लौहसेवने कृते तस्यानुपानमाह, माहिषमिति ।—अयसि लौहे, लौह-  
सेवने कृते इत्यर्थः । भक्षके तीक्ष्णग्री, माहिषस्यात्यभिष्यन्दितान्, द्रव्यगुणे अत्यग्नि-  
दितमुक्तदंष्ट्रमाह । अन्वयः क्षतरोगादन्यत्र रोगे । समवारिप्रसाधितं  
तुल्यमानजलेन सह पक्तं, गव्यमित्यनेनान्वयः । सर्वत्र सर्वस्मिन् रोगे, भक्षके  
सदा कोष्ठदोषादौ चेति यावत् । अदिति ।—लौहस्य मात्रावृद्धा यदा दुग्ध-  
स्यापि मात्रावृद्धिः काव्यो, तदा लौहं सेवित्वा अर्द्धं दुग्धं भोजनकाले चाक्षौ  
दुग्धं सेव्यमित्यर्थः । अतिक्षीणयेस्तु भोजनकाले एव देयं, न तु लौहसेवना-  
नन्तरमित्यर्थः ॥ १०१—१०४ ॥

दधिमण्डे विषे चौद्रेऽनुष्य पित्तामयेऽपि च ॥ १०५ ॥

रोगविशेषे अनुपाननिषेधः ।—

ऊर्ज्ज्वलजगदे श्वास-कासोरःक्षतपौनसे ।

गोतभाथप्रसक्तेषु स्वरभेदे न तद्वितम् ॥ १०६ ॥

न पिबेत् श्वासकासात्ती रोगे चाप्यूर्ज्ज्वलजगमे ।

क्षतोरस्कः प्रसेकी च यस्य चोपहतः स्वरः ॥ १०७ ॥

अथ शिशोर्भेषजपरिमाणमाह ।—

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।

अवलेह्या तु कर्तव्या मधुचीरसिताष्टतैः ॥ १०८ ॥

एकैकां वर्धयेत् तावत् यावत् संवत्सरो भवेत् ।

तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्यात् यावदाषोडशाब्दकः ॥ १०९ ॥

ततस्तु सप्ततिं यावत् कर्षमात्रां प्रयोजयेत् ।

एवमेव विभागोऽयं तदूर्ध्वं बालवत् क्रिया ॥ ११० ॥

जातस्य शिशोर्बालकस्य प्रथमे मासि भेषजस्य रक्तिका मात्रा मध्वादिभिर्लेदुं दातव्या । प्रथममासादारभ्य द्वादशमासपर्यन्तं मासं मासं प्रति रक्तिकैकावृद्धिः कार्या, \* नात्र दशरक्तिकपरिमाणमाषकविभागः किन्तु संवत्सरपूर्णांश्च द्वादशरक्तिका मात्रा दयेति भावः ।

द्रव्यविशेषे दोषविशेषे च अनुपानविशेषमाह, अनुपाननिति ।—अनुष्यमित्यङ्गकारि इति शेषः ॥ १०५ ॥

निषिद्धानुपानं रोगमाह, ऊर्ज्ज्वलादि ।—तत् अनुपानमित्यर्थः ॥ १०६।१०७ ॥

शिशोरौषधमात्रमाह, प्रथमे इति ।—मासैकवर्षीयशिशोः रक्तिका मात्रा, ततश्च मासि मासि रक्तिकावृद्धिं कृत्वा द्वितीयवर्षादौ माषैकवृद्ध्या षोडशे वर्षे कर्षमात्रा दातव्या, षोडशवर्षीयस्यापि बालत्वेनाभिधानात्, यदुक्तं वाग्भटे—

\* नात्र दशरक्तिकपरिमाणमाषकविभागः; अयमर्थः,—द्वितीयवर्षमारभ्य षोडशवर्षपर्यन्तं माषैकवृद्ध्या षोडशमाषक यावत् दद्यामित्यर्थे वक्ष्यति, एतदनुसारेण प्रथममासादारभ्य दशममासपर्यन्तं रक्तिकैकवृद्ध्या दशमे मासि माषकापरपर्याये दशरक्तिके सम्पूर्णे, एकादशे तथा द्वादशे च मासि माषकमानमेव न ददितव्यं, किन्तु एकैकवृद्ध्या द्वादशरक्तिकेव मात्रा दद्यात्यर्थः ।

तद्द्रव्यमिति द्वादशमासद्द्रव्यं, तेन द्वितीयवर्षे प्रथममासादारभ्य षोडशवर्षपर्यन्तं माषकवृद्धा कर्षपूरणं कार्यम् । ततः षोडशवर्षात् सप्ततिं यावत् तावदेव कर्षणेव व्यवहारः । तद्द्रव्यं सप्ततिः परं यावज्जीवन-पर्यन्तं बालवत्, माता कार्येति शेषः ।

अन्येऽप्याहुः,—

रक्तिमारभ्य कर्षन्तु मानं बालगदे मतम् ।

कर्षादौ तु जलशुद्ध्या क्वाथस्य कार्षिकी मतः ॥ १११ ॥

कर्षादाविति प्रागुक्तं परिभाषया “कर्षादौ तु पलं यावत्” दद्यात् षोडशिकं जलम्” इत्याख्यायेति शेषः ।

अतिशिशौ औषधप्रयोगविधिः ।—

यस्तु स्यात् क्षीरपो बालः कषायं पातुमक्षमः ।

तदा भिषक् कुमारस्य तस्य धात्रीञ्च पाययेत् ॥ ११२ ॥

ये गदानाञ्च ये योगाः प्रोक्ताः स्वे स्वे चिकित्सिते ।

तेषां कल्केन संलिप्ता कुमारं पाययेत् स्तनौ ॥ ११३ ॥

त्रिविधबालनिर्देशः ।—

त्रिविधाः कथिता बालाः क्षीरान्नोभयवर्त्तिनः ।

स्वास्थ्य ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां व्याधिसम्भवः ॥ ११४ ॥

बालास्तु त्रिविधा भवन्ति—क्षीरवर्त्ती, अन्नवर्त्ती, उभयवर्त्ती च ; उभयवर्त्तीति क्षीरान्नाभ्यां द्वाभ्यां वर्त्तनं येषामिति ।

अथ भैषज्यमक्षणकालमाह ।—

भैषज्यकालो भक्तादौ मध्ये पञ्चान्मुहुर्मुहुः ।

सामुद्रं भक्तसम्भुक्तं ग्रासे ग्रासान्तरेऽष्टधा ॥ ११५ ॥

“वयस्तुषोडशादालं तत्र चालिन्दिधौजसाम् । वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं मयः ॥” इति ॥ १०८—१११ ॥

अतिशिशौ औषधप्रयोगविधिमाह—य इत्यादि । शिशोस्त्रैविध्यमाह, त्रिविधा इति ।—क्षीरान्नोभयवर्त्तिनः क्षीरवर्त्तिनः, अन्नवर्त्तिनः तथा क्षीरान्नोभयवर्त्तिन इत्यर्थः । ताभ्यां क्षीरान्नाभ्याम् ॥ ११२—११४ ॥

रोगभेदे दोषभेदे च भैषज्यप्रयोगकालमाह, भैषज्येत्यादि ।—मध्यं भक्तस्य मध्यभोजने । पञ्चात् भोजनान्तो । सामुद्रं समुद्रतटस्थं । समुद्रतटस्थं मध्यं

रोगविशेषे औषधभक्षणकालः ।—

अपाने विगुणे पूर्वं समाने मध्यभोजने ।

व्याने तु प्रातरशनमुदाने भोजनोत्तरम् ॥ ११६ ॥

वायौ प्राणे प्रदुष्टे तु ग्रासे ग्रामान्ते दृश्यते ।

श्वासकामपिपासासु तत्तु कार्यं मुहुर्महुः ॥ ११७ ॥

सामुद्रं हिङ्गिने देय लघुनाऽन्नेन संयुतम् ।

सभोज्यं त्वौषधं भक्ष्येर्विचित्तैरक्तुचौ हितम् ॥ ११८ ॥

सामुद्रमिति—“सामुद्रं भेषजं विद्यादन्नस्याद्यवसानयोः” इति ।

अन्ये त्वाहुः,—

अभक्तं पूर्वभक्तञ्च मध्यभक्तं सभक्तकम् ।

भक्तोपरिष्ठात् सामुद्रं भक्तस्यैवान्तरेऽपि च ॥ ११९ ॥

ग्रासे ग्रामान्तरे चैव मुहुर्महुरिति स्मृतः ।

काला दशैते धीमद्भिरोषधस्य समासतः ॥ १२० ॥

मतान्तरे रोगविशेषे औषधभक्षणकालः ।—

बलिनो महतो व्याधेरभुक्ते भेषजं हितम् ।

सर्वव्याधिहरं पथ्यं पूर्वभक्तं महीषधम् ॥ १२१ ॥

मध्यकायगतान् रोगान् मध्ये भक्तं निहन्ति च ।

सभक्तं सुकुमाराणां बालानामौषधद्विषाम् ॥ १२२ ॥

भक्तोपरिष्ठात् शस्तञ्च ऊर्ध्वजत्रुविकारिणाम् ।

सम्बन्धे वर्चसां मुद्रं दीप्ताग्निबलिनां हितम् ॥ १२३ ॥

भक्तयोरन्तरे ज्ञेयं भोजनद्वयमध्यतः ।

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत मध्यदेहविकारिणाम् ॥ १२४ ॥

भोजनस्य आद्यन्तकाले सेवितयोरौषधयोर्मध्ये पतितस्य सुक्तद्रव्यस्य सम्पुटमध्य-  
स्थितत्वादिवेति यावत् । आसान्तरे दधीयांसयोर्मध्ये । अपाने इत्यत्र वायाविति  
शेषः । पूर्वं भक्तादौ । समाने वायाविति बोध्यं, विगुणे इति शेषः । एवं  
व्यानोदानादावपि बोध्यम् । अभक्तं प्रातरित्यर्थः । भक्तस्यैवान्तरे दिवाभोजनस्य

ग्रासे ग्रासे कशाग्नीनां वाह्यासक्तधियामपि ।

ग्रासान्तरे हितं विद्यात् कुष्ठमेहविकारिणाम् ॥ १२५ ॥

श्वासक्रामपिगमानां तत्तु कार्यं मुहुर्मुहुः ॥ १२६ ॥

अन्यच्च ।—

भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः ।

कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १२७ ॥

भेदः पुनः कषायपानेन वा पयस्तु (?) प्रातः सायं मध्याह्ने रात्रौ च  
आधिविशेष-चातुर्विधेष-प्रकृतिविशेषतारतम्यतया दैयमित्यर्थः ।

प्रथमकालः ।—

श्रेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।

किञ्चित् सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥ १२८ ॥

सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥ १२९ ॥

लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभातेऽनन्तरमाहरेत् ।

एवं स्यात् प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ १३० ॥

द्वितीयकालः ।—

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ।

अरुचौ चित्रभोज्ये च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ १३१ ॥

समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावपि दीपनम् ।

रात्रिभोजनस्य च मध्यभागे इति यावत् । मुहुं सामुद्रम् । वाह्यासक्तधियां  
विषयासक्तचेतसाम् । तत्र भेदस्तु दर्शितः, अथमभिप्रायः,—कषायपाने सामान्यतः  
प्रभातकालस्यैव प्रशस्तत्वेऽपि व्याध्यवस्थादिकं नीत्य कालान्तरमपि प्राशस्येन गम्यते,  
यथा जीर्णज्वरहरनिद्रिग्निकादिकायः रात्रिज्वरे सायं दिवाज्वरे च प्रातः  
प्रयोज्यः, यदुक्तं अजटीकाया शिवदासेन—“तच्च रात्रिज्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते ।  
श्वासकासविनाशाय सन्दाग्रदीपनाय च । अरुचे च निद्रत्यर्थे प्रातरुत्थाय  
तं पिबेत् ॥” इति । यथा वा माषवत्सादिकायस्य सायं पेयत्वेनाभिधानम्  
इति ॥ १२५—१२७ ॥

सक्तमेवार्थं तन्नान्तरीयवचनेनाह, श्रेय इति ।—लेखनार्थं चर्शनार्थं, यथा

दद्यात् भोजनमध्ये तु भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ १३२ ॥

व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत् ।

हिकाक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥

एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ १३३ ॥

तृतीयकालः ।—

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि ।

ग्रासे ग्रासान्तरे देय भैषज्यं सात्त्व्यभोजने ॥ १३४ ॥

प्राणे प्रदुष्टे सात्त्व्यस्य भक्तस्यान्ते च दीयते ।

श्लोषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः ॥ १३५ ॥

चतुर्थकालः ।—

मुहुर्मुहुश्च दृष्टृर्द्धि-हिकाश्वासगरेषु च ।

सान्द्रञ्च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १३६ ॥

पञ्चमकालः ।—

ऊर्ध्वजलविकारिषु लेखने हृंहणे तथा ।

पाचने श्मने देयमनन्नं भेषजं निशि ॥

इत्ययं पञ्चमः कालः प्रोक्तो भैषज्यहेतवे ॥ १३७ ॥

अथ क्रियाकालव्यवस्थामाह—

प्रशक्तविधायाः निर्देशः ।—

या तूदीर्णं श्मयति नान्यं व्याधिं करोति च ।

स्त्रौल्यादौ । “सात्त्व्यभोजने” तथा “सात्त्व्यस्य” इत्यत्र “सात्त्व्यभोजने” तथा “सात्त्व्यस्य” इति पाठान्तरद्वयं प्राप्तादिकम् । ननु प्राणादिभेदेन पञ्चविधस्य वायोः प्रकोपे पृथक् पृथक् भैषज्यकालः प्रदर्शितः, पित्तकफयोस्तु बाधोपशमादिभेदभिन्नयोः न तथा, तत् कथमिति चेदुच्यते—दोषेषु वायोरप्रतिबाध्यबोध्यत्वादायुकारित्वात् बहुविधविकारकारित्वाच्च पाधान्येन पित्तकफयोरेव प्रकोपकत्वेन च वायोः पृथक् दर्शितः, न पित्तकफयोः ; तथा च—“व्यथुरेष भगवान् वायुरित्यभिप्रायितः ॥ अचिन्त्यबोध्यौ दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥” इति ॥ १२८—१३७ ॥

अथ समाप्तश्रुतिक्रियाविधिमाह, येति ।—उदीर्णम् उद्धतं, अज्ञातमित्यर्थः ॥

सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदोरयेत् ॥ १२८ ॥

अन्यमिति ज्वरादीनाम् अन्यतमं न उदोरयेदिति न वर्धयेत्,  
न जनयेदित्यर्थः । तथा च चरकचिकित्साप्राभृतौयाध्याये—

यामिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।

सा हि क्रिया विकाराणां कर्म तद्विषजां मतम् ॥ १३९ ॥

विषजां चिकित्सकानामित्यर्थः ।

निन्दितक्रियायाः निर्देशः ।—

अल्पे गदे मद्धत् कर्म क्रिया लघ्वी महागदे ।

द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्य युक्तकर्मता ॥ १४० ॥

क्रियासाङ्ख्यनिषेधः ।—

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां समाचरेत् ।

पूर्वस्या शान्तवेगाया न क्रियासङ्करो मतः ॥ १४१ ॥

सङ्करो व्यामिश्रता । अतो मुख्यप्रयोगाणां मिश्रणम् एकस्मिन्नेव  
रोगिणि न कर्तव्यं, परस्परगुणविरोधात् भैषज्यगुणवैकल्यादग्निसान्ध्य-  
जननत्वाच्च ।

तथाऽपि साङ्ख्यसाह—

साङ्ख्यसाधनिर्देशः ।—

क्रियाभिस्तुत्यरूपाभिः क्रियासाङ्ख्यमिष्यते ।

भिन्नरूपतया यास्तु ताः कुर्वन्ति न दूषणम् ॥ १४२ ॥

तुत्यरूपाभिः क्रियाभिः क्रियासाङ्ख्यमिष्यते, तु पुनः, ताः क्रियाः  
वैभिन्नरूपा भवन्ति तदा न साङ्ख्यमिति तु-शब्देनेतदुच्यते । अतो भिन्न-  
रूपतया अतुत्यरूपाभिः क्रियाभिर्न क्रियासाङ्ख्यं भवतीत्यर्थः । \* एतेनैवं

धातवः वासादयः रसादयश्च, रसादीनामिव वासादीनामपि शरीरधारकत्वेन  
ज्ञातशब्देनाभिधीयमानत्वात् । अल्पे गदे लघुश्लाघो, मद्धत् कर्म गुरुश्लाघ्यप्राप्तौ  
चिकित्सा । क्रियायाः चिकित्साकर्तृणः, प्राक्प्रयुक्तश्लेषस्थोत यावत् ।

पुनः पूर्वप्रयुक्ताया क्रियाया, शान्तवेगाया निवृत्तगुणायामित्यर्थः, पूर्वप्रयुक्तश्लेषधत्ता

क्रिया यदा मन्दोन्मत्ति तदा अस्या क्रिया समाचरेदित्यर्थः ॥ १३८—१४२ ॥

बोधयति—पाचनघृतयोर्द्वयोर्गुडवटकलेहगुडिकादीनाञ्च पाचनयुक्ताना-  
मेकस्मिन्नेव रोगिण्येकदिने प्रयोगः कर्तव्यो यथा—व्याधिरनुपानं यद्वयत्  
पाचनं विहितमिति ; किन्तु भिन्नरूपेणौषधद्वयेन दोषप्रसङ्गः स्यादेव, (?)  
अतः परस्परविरोधित्वेन औषधद्वयकल्पना न कार्या, यथा गुडिकाद्वये  
लेहद्वयमधिकमिति दिक् ।

रसस्य परिणतौ दिनावधिनिर्देशः ।—

षड्भिः केचिदहोरात्रैः केचित् सप्तभिरेव च ।

इच्छन्ति मुनयः प्रायो रसस्य परिवर्त्तनम् ॥ १४३ ॥

उचितक्रियाकालस्य अनुपेक्षणीयतानिर्देशः ।—

शीते शीतप्रतीकार उष्णे चोष्णनिवारणम् ।

कृत्वा कुर्यात् क्रिया प्राप्तां क्रियाकालं न ह्यपयेत् ॥ १४४ ॥

सर्वञ्च रोगे प्रशमाय कर्म

हौनातिरिक्तं विपरीतकालम् ।

मिथ्योपचारान्न हि तद्विकारं

शान्तिं नयेत् पथ्यमपि प्रयुक्तम् ॥ १४५ ॥

अथ पारिभाषिकीसंज्ञामाह—

चतुरश्रं पञ्चाश्रञ्च ।—

वृक्षाम्बुमातुलुङ्गाम्बु वटराम्बुवेतसी ।

चतुरश्रमिदं तद्वि पञ्चाश्रञ्च सदाङ्गमम् ॥ १४६ ॥

पञ्चलवणम् ।—

सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च ।

रसस्य रक्तत्वेन परिणतौ दिनावधिमाह, षड्भिरिति ।—रसस्य रसघातो,  
सदृक्तं चरके—“षड्भिरिति केचिदहोरात्रैरेच्छन्ति परिवर्त्तनम् । सन्तत्या भोज्यधातूनां  
प्रारब्धतिष्ठु चक्षवत् ॥” इति, यथा—रसस्य रसोषधस्येत्यर्थः ॥ १४३ ॥

उपयुक्तकाले चिकित्साया अनुपेक्षणीयतामाह, शीते इति ।—ह्यपयेत् परि-  
श्रजेत्, अतिक्राम्येदति यावत् ॥ १४४।१४५ ॥

पारिभाषिकीं सज्जामाह, वृक्षाम्बुत्यादि ।—उष्णाम्बु न ह्यार्द्रकम् । औद्भिद “आम्बु”



सामुद्रेण सहेतानि पञ्च स्युर्लवणानि च ॥

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-लवणानि क्रमाद्विदुः ॥ १४७ ॥

अष्टमूत्रम् ।—

अविमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषञ्च यत् ।

हस्तिमूत्रमथोष्टस्य हयस्य च खरस्य च ॥

इति प्रोक्तानि मूत्राणि यथासामर्थ्ययोगतः ॥ १४८ ॥

चतुःस्नेहाः ।—

सर्पिस्तेलं वसा मज्जा स्नेहोऽप्युक्तश्चतुर्विधः ।

पानाभ्यञ्जनवस्त्यर्थं न स्यार्थश्चैव योगतः ॥ १४९ ॥

अष्टचौरम् ।—

अविचौरमजाचौरं गोचौरं माहिषञ्च यत् ।

उष्ट्रीणां हस्तिनौनाञ्च बडवायाः स्त्रियास्तथा ॥ १५० ॥

चातुर्जातक-त्रिजातके ।—

चातुर्जातं समाख्यातं त्वगेलापत्रकेशरैः ।

तदेव त्रिसुगन्धिः स्यात् त्रिजातकमकेशरम् ॥ १५१ ॥

सर्वगन्धः ।—

चातुर्जातककर्पूर-कक्कोलागुरुशिल्लकम् ।

क्षवङ्गसहितश्चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ १५२ ॥

त्रिफलादयम् ।—

पृथ्वा विभीतकं धात्री महती त्रिफला मता ।

क्षत्पा काश्मर्यखजूर-परुषकफलेर्भवेत् ॥ १५३ ॥

इति प्रविष्टम् । सामुद्रं “करकच” इति ख्यातम् । अविमूत्रं मेघमूत्रम् । बडः  
बाघा; अश्विना; । लक्ष् “दाशचिनि” इति ख्यातम् । पत्रं तेजपत्रम् । केशर-  
नागकेशरः । तदेव चातुर्जातकमेव । अकेशरं नागकेशररहितम् । शिल्लकं  
“शिल्लारस” इति प्रविष्टम् । काश्मर्यं नागभाषी । परुषकं “फलसा” इति ख्यातम् ।

तूषणं, त्रिमदश्च ।—

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च मरिचं तूषणं विदुः ।

विडङ्गमुस्तुचित्रैश्च त्रिमदः समुदाहृतः ॥ १५४ ॥

पञ्चक्षीरिवृक्षाः ।—

उडुम्बरो वटीऽखत्या वेतसः प्लक्ष एव च ।

पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः संज्ञायां समुदाहृताः ॥ १५५ ॥

वेतसोऽव गन्धिन इति ख्यातः, गन्धमुत्त इत्युत्तरदेशे यस्य प्रसिद्धिः ।

प्लक्ष इति वटः, अथवा पर्कटोत्पश्यभेदः ।

पञ्चपल्लवम् ।—

आम्रं जम्बूकपित्यानां वीजपूरकविल्वयोः ।

गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ १५६ ॥

पञ्चकोलम् ।—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्तकनागरम् ।

पञ्चकोलमिदं प्राहुः पञ्चोषणमथापरे ॥ १५७ ॥

षड्पणम् ।—

पञ्चकोलं समरिचं षड्पणमुदाहृतम् ॥ १५८ ॥

महत् पञ्चमूलम् ।—

विल्वश्याणकगाम्भारोपाटलागणिकारिका ।

एतन्महत् पञ्चमूलं संज्ञया समुदाहृतम् ॥ १५९ ॥

स्वल्पपञ्चमूलं दशमूलञ्च ।—

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतोदयगोक्षुरम् ।

कनीयः पञ्चमूलं स्यात् उभयं दशमूलकम् ॥ १६० ॥

दणपञ्चमूलम् ।—

क्षुण्णः काशः शरो दर्भः इक्षुश्चैव दणोद्भवम् ।

पञ्चदणमिदं ख्यातं दणजं पञ्चमूलकम् ॥ १६१ ॥

शृङ्गवेरं शण्डो । शालाक्यं तु “वेतसः” इत्यत्र “मधुकं” पठित्वा पञ्च क्षीरिवृक्षा इत्याख्याताः । वीजपूरकः “विजौरा” इति ख्यातः जम्बीरभेदः । गन्धकर्मणि, तैलादीनानिति शेषः । बृहतीद्वयं बृहती कण्टकारी च । कनीयः स्तम्भम् ।

वल्लीपञ्चमूलम् ।—

विदारो चाजशृङ्गो च रजनी सारिवाऽमृतम् ।

वल्लीजं पञ्चमूलञ्च कथितं मुनिपुङ्गवैः ॥ १६२ ॥

कण्टकपञ्चमूलम् ।—

करमर्दः श्वदंष्ट्रा च हिंसा भिग्टी शतावरी ।

कण्टकाख्यं पञ्चमूलं निर्दिष्टं सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ १६३ ॥

करमर्दः करञ्जः । श्वदंष्ट्रा गोक्षुरकः । हिंसा कुड्मकाली, कालियाकुड्मः ।  
स्थमन्यत् ।

अष्टवर्गः (जीवनीयाष्टकम्) ।—

ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेढे द्वे तथर्षभकजीवकी ।

काकोली-क्षीरकाकोलीत्यष्टवर्गः प्रकीर्तितः ॥ १६४ ॥

जीवनीयगणः ।—

अष्टवर्गश्च परिण्यौ जीवन्ती मधुकं तथा ।

जीवनीयगणः प्रोक्तो जीवनश्च पुनस्ततः ॥ १६५ ॥

श्वेतमरिचं, ज्येष्ठांस्व सुखोदकञ्च ।—

शोभाञ्जनस्य यदौजं तत् श्वेतमरिचं स्मृतम् ।

ज्येष्ठांस्व तण्डुलांस्व स्यात् उष्णांस्व च सुखोदकम् ॥ १६६ ॥

गुडान्बु ।—

गुडयोमात् गुडान्बु स्यात् गुडवर्णरसान्वितम् ॥ १६७ ॥

वेशवारः ।—

निरस्थि पिशितं पिष्टं खिन्नं गुडघृतान्वितम् ।

कृष्णा-मरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥ १६८ ॥

अस्त्रमूलकम् ।—

काञ्जिकव्युषितं पक्वं मूलकं त्वक्मूलकम् ॥ १६९ ॥

विदारो विदारीकन्दः, “भूमिकृषाण्ड” इति लोके । अजशृङ्गो लकटशृङ्गो । रजनी  
हरिद्रा । सारिवा अनन्तमूलम् । अमृतं गुडूषी । “हिंसा” इत्यत्र “अहिंसा” इति  
पाठान्तरम् । परिण्यौ मुद्गपर्णी माषपर्णी च । मधुकं बटिमधु । व्युषितं व्युषितं,

कटुरं त्रिविधतक्रञ्च ।—

दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कटुरमिष्यते ।

तक्रं ह्यदश्विन्मथितं पादाभ्युर्ध्वं निर्जलम् ॥ १७० ॥

दधिकूर्चिका तक्रकूर्चिका च ।—

दध्ना सह पयः पक्वं सा भवेदधिकूर्चिका ।

तक्रेण पक्वं यत् चीरं सा भवेत्तक्रकूर्चिका ॥ १७१ ॥

शुक्तम् ।—

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ।

यत्र द्रवेऽभिष्यन्ते तच्छक्तमभिधीयते ॥ १७२ ॥

श्रीधुः, आसवः, मेरेयम् ।—

श्रीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत् ।

मेरेयं धातकीपुष्प-गुडधान्यास्त्रसंहितम् ॥ १७३ ॥

आरनालम् ।—

आरनालन्तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।

पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥ १७४ ॥

अश्ववटकाः ।—

मय्यनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता ।

निर्मलेनाश्वुनाऽऽपूर्य्य तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ १७५ ॥

राजिकाजोरलवण-द्विङ्गुशुण्ठीनिशाकतम् ।

आङ्गिकाषःस्थितं मूलकमस्त्रमूलकमित्यर्थः । ससारकस्य अगुडतनवनीतस्य । पादाभ्यु-  
र्ध्वं निर्जलमिति पदवयं तक्रादिभिस्त्रिभिः क्रमेण योजनीयम् । कूर्चिका  
“काना” इति भाषा । अभिष्यन्ते सन्धानीक्रियन्ते, कालान्तरेणास्त्रीभूतानि  
जायन्ते इत्यर्थः । श्रीधुरिति—क्षिपेत् पक्वः क्षुरसः सत्पात्रे सन्धानीकृतः  
श्रीधुरिति ज्ञेयः । अपक्वः क्षुरसः तथाभूतः आसव इति ज्ञेयः ;  
अथ आसवः “यदपक्वौषधान्मुष्पां सिद्धं मयं स आसवः” इत्युक्तादासवादन्यो  
ज्ञातव्यः । मेरेये धान्यास्त्रं आङ्गिकम् । आभेरपक्वैः सन्धितैः आलान्तरेण  
लवणात्क्षैरित्यर्थः । सौवीरं इत्युक्ताम् । मय्यनी आलोच्यर्थः । निशाक

निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यञ्च मुद्रयेत् ॥

ततो दिनत्रयादूडुमन्त्राः स्युवटका भ्रवम् ॥ १७६ ॥

कशरा त्रिशरा वा ।—

तिलतण्डुलभाषैश्च कशरा त्रिशरेति सा ॥ १७७ ॥

स्वल्पचुक्रम् ।—

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डं सगुडञ्चौद्रकाञ्जिकम् ।

धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं स्वल्पचुक्रं तदुच्यते ॥ १७८ ॥

आसवारिष्टयोर्लक्षणम् ।—

यदपक्वौषधान्मभ्या सिद्धं मर्द्यं स आसवः ।

अरिष्टः काथसिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः ॥ १७९ ॥

शीघ्रमाह ।—

आशृतश्चापि शीघ्रः स्यादित्याहुस्तद्विदो जनाः ॥ १८० ॥

आशृत इति सम्यक् पक्वः ।

सुरायाः प्रकारभेदे नामानि ।—

सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात् ततः काटम्बरी घना ।

तदधो जगत्तो ज्ञेयो मेदको जगत्तादृघनः ॥ १८१ ॥

वक्रसो हृतसारः स्यात् सुरावोजश्च किण्वकम् ।

यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सेव कारुणौ ॥ १८२ ॥

गुडेलुम्वीकाशुक्तानि ।—

गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ।

आशृतं चान्नतां जातं गुडशुक्तं तदुच्यते ॥ १८३ ॥

एवमेवेतुशुक्तं स्यात् मृद्वीकासम्भवं तथा ॥ १८४ ॥

हरिद्रा । वटकान् पिष्टविदलकृतान् “वडा” इति ख्यातान् । स्वल्पचुको गुडादिमान्-  
सुप्तरोत्तरं विगुणं यावत्, यदुक्तं चक्रसङ्ग्रहे—“विगुणं गुडमध्वारणास्रमस्तु  
कमादिह” । अत्रादि-शब्दात् दक्षिणतः शब्दाभिप्रेत्यते । त्रिरात्रस्थमिति चर्मकाञ्चामि-  
श्रायेण, यथादिषु च कमाश्चतुष्टयपञ्चाशं स्थापनीयं, यावत्ता वा अस्मैभवति  
इति । “स्वल्पचुक्रम्” इत्यत्र, “शुक्तं, चुक्रम्” इति, षष्ठ्यर्थः, प्राठः । गुडशुको

तुषाम्बु-सोवीरादीनि ।—

तुषाम्बु चाशृतं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ।

सुनिस्तुषैश्च पक्कैश्च सौवीरं चाशृतं भवेत् ॥ १८५ ॥

कुल्पापो धान्यमण्डेन चाशृतं काञ्चिकं भवेत् ॥ १८६ ॥

अन्यत् यदाह चरकः,—

तुषोदकम् ।—

मृष्टान्माषतुषान् सिद्धान् यवचूर्णसमन्वितान् ।

आशृतान्माषा तद्वज्जातं तच्च तुषोदकम् ॥ १८७ ॥

काञ्चिकम् ।—

आशुधान्यं क्षोदितञ्च बालमूलन्तु खण्डशः ।

क्षतं प्रस्थमितं पात्रे जलं तत्राढकं क्षिपेत् ॥ १८८ ॥

तावत् सन्धीय संरचेत् यावत् अम्लत्वमागतम् ।

काञ्चिकं तत्तु विज्ञेयमेतत् सर्वत्र पूजितम् ॥ १८९ ॥

शिण्डाकी ।—

शिण्डाकी चासुता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १९० ॥

मधुशुक्तम् ।—

जम्बौरस्तरसप्रस्थं मधुनः कुड्वं तथा ।

तावच्च पिप्पलीमूलादेकौक्षत्य घटे क्षिपेत् ॥

धान्यराशौ स्थितं मासं मधुशुक्तं तदुच्यते ॥ १९१ ॥

खड्गयूपकाम्बलिकयोर्लक्षणम् ।—

तक्रं कपित्थचाङ्गेरौ-भरिचाजाजिचित्तकैः ।

सुपक्वः खड्गयूपोऽयमयं काम्बलिकोऽपरः ॥

दध्यन्तो लवणस्नेह-तिलमाषसमन्वितः ॥ १९२ ॥

“ताडी” इति ख्यातम् । मधुशुक्ते तावच्च पिप्पलीमूलादिति पिप्पली-  
मूलस्यापि कुड्वं याज्यामित्यर्थः । खड्गयूपे तक्रप्रस्थे भरिचादीनां वीर्य-  
लादित्युक्तं कपित्थचाङ्गेर्योर्मिद्वयोर्बलात् मधुना दत्त्वा सुप्तादयः साध्यन्ते ।

प्रमथ्या तर्पणञ्च ।—

संज्ञा प्रमथ्या विहिता योगे दीपनपाचने ।

द्रवेणालोडितास्ते स्युस्तर्पणं लाजशक्तवः ॥ १८३ ॥

मथ्यः ।—

शक्तवः सर्पिषा युक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ।

नात्यच्छा नातिमान्द्राश्च मथ्य इत्यभिधीयते ॥ १८४ ॥

उष्णोदकम् ।—

क्वाथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम् ।

भवत्यर्द्धावशिष्टन्तु तदुष्णोदकमिष्यते ॥ १८५ ॥

भेषजनामानि ।—

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्य साधनमौषधम् ।

प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ १८६ ॥

विद्याङ्गेषजनामानि तच्चापि द्विविधं स्मृतम् ।

स्वस्थस्यौजस्करं किञ्चित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत् ॥ १८७ ॥

इति परिभाषाप्रदीपे तृतीयः खण्डः ।

## चतुर्थः खण्डः ।

अथ पञ्चकर्माख्याह—

संशोधनप्रशंसा ।—

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिताः कालेन पाचनैः ।

युषधीनिवात् मुद्गादीनाम् । खड्युषस्येव दध्नादिशोभात् कान्दलिकसंज्ञा ज्ञातव्या ।

दध्यस्तः दध्ना षस्त्रोक्तः ॥ १४६—१८५ ॥

औषधपर्यायमाह—चिकित्सितमिति ॥ १८६।१८७ ॥

इति परिभाषाप्रदीपे तृतीयखण्डव्याख्या समाप्ता ।

यथाशास्त्रमुपयुक्तमपि भेषजं विना पञ्चकर्म न सम्यक्फलदं जायते, अतः पञ्चकर्म विपश्चरादौ तस्य सामान्यतः उपयोगितामाह, दोषा इति ।—कालेन किञ्चित्-

ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥ १ ॥  
पाचनैरिति लङ्घनपाचनादिभिर्दोषह्यारिभिरित्यर्थः ।

पञ्चकर्मणां नाम ।—

वमनं रेचनं नस्यं निरुद्धश्चानुवासनम् ।  
ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म मात्रा तस्य प्रयुज्यते ॥ २ ॥

शोधनसंज्ञाया हेतुः ।—

यदावहेत् वह्निर्दोषान् पञ्चधा शोधनं हि तत् ॥ ३ ॥

नखादिप्रयोगे वयोनिर्देशः ।—

न नस्यं न्यूनसप्ताब्दे नातीताशोतिवत्सरे ।  
न चोन्वादादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे ॥ ४ ॥  
न शुद्धिरुनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततौ ।  
न न्यूनषोडशेऽतीते सप्ततौ रक्षमौक्षणम् ॥  
आजन्ममरणात् शस्तः प्रतिमर्षस्तु सर्वदा ॥ ५ ॥

क्वालान्तरमित्यर्थः । पाचनैः दोषपाचकोषधैः । संशोधनैः वमनविरचनादिभिः  
पञ्चकर्मरूपैः ॥ १ ॥

पञ्चकर्मणां नामान्वाह, वमनमिति ।—रेचनं विरेचनम् । निरुद्धः चास्थापनं,  
रुचवशिरित्यर्थः । अनुवासनं स्नेहवशितः । मात्रा व्याधिवयोवलाद्यनुरूपमात्रा इति  
यावत् ॥ २ ॥

वमनादीनां शोधनसंज्ञाले हेतुमाह, यदिति ।—यत् कर्म दोषान् वह्निरावहेत्  
शरीराभ्यन्तरात् वह्निर्मिसारयेत्, तत् शोधनं, ज्ञेयमिति शेषः । तच्च पञ्चधा ॥ ३ ॥

वमनादीनां तथा शोधनविशेषत्वात् धूमकवलयरक्तमोक्षणानामपि प्रयोगयोग्यं  
वयो निर्देष्टुमाह, जेति ।—यत्र धूमकवलयरक्तमोक्षणानामपि दोषनिःसारकत्वेन  
देहशुद्धिकरत्वात् शोधनपञ्चकेषु मध्ये पाठो न दोषावह इति सन्तव्यम् ।  
“न शुद्धिरुनदशमे” इत्यत्र शुद्धिवसनरूपा शुद्धिर्ज्ञातव्या, “रेचनं पञ्चमात्  
वर्षात् धूमन्तु द्वादशात् परम्” इत्यनेन पञ्चमवर्षाद्द्वे विरेचनविधानदर्शनात् ।  
प्रतिमर्षः नखभेदः, तद्विधानाद्याये वक्ष्यति स्वयमेव ॥ ४।५ ॥



तत्रादौ वमनमाह—

वमनप्रयोगविधिः ।—

पूर्वाह्णे पाययेत् पीतो जानुतुल्यासने स्थितः ।

तन्मना जातहृत्तास-प्रसेकच्छर्दयेत् ततः ॥ ६ ॥

चरकस्त्वाह—

शोधनप्रयोगार्हमासः ।—

माधवप्रथमे मासि नभस्यप्रथमे पुनः ।

सहस्यप्रथमे चैव वाहयेद्दोषसञ्चयम् ॥ ७ ॥

माधवप्रथमे मासीति वैशाखप्रथमे भागे, भाद्रपदस्य प्रथमे, पौषस्य प्रथमे च, दोषसञ्चयं दोषाणां सञ्चयम् उपचयं वाहयेत् सारयेदित्यर्थः ।

अन्यच्च ।—

मधौ सहे च नभसि मासि दाषांस्तु वाहयेत् । ८ ॥

मधौ चैत्रे मासि, सहे अग्रहायणे, नभसि आश्विने दोषान् वाहयेदित्यर्थः ।

अत्युष्णदिकाले शोधनस्याकत्तव्यता ।—

अत्युष्णवर्षेऽशीता हि ग्रीष्मवर्षेऽहिमागमाः ।

श्रीषधस्य शरीरस्य ते भवन्ति विकल्पकाः ॥ ९ ॥

विकल्पका इति विरुद्धकार्यजनकाः ।

वमनविधिमाह, पूर्वाह्णे इति ।—पाययेत्, वमनप्रयोगमिति शेषः । जानु-  
तुल्यासने जानुप्रमाणाव्रतावने । तन्मना वमनविषये एव दत्ताभिनिवेशः ।  
प्रसेकः सुखात् मलनिःसरणम् ॥ ६ ॥

वमनाद्युपयोगिकालमाह, माधवेति ।—वाहयेत्, वमनादिनेति शेषः ।  
“वाहयेत्” इत्यत्र “हारयेत्” इति पाठान्तरम् । केचित् माधवप्रथमे इत्यादीना-  
मेवमर्थं करोति, तद्वदथा—माधवस्य वैशाखस्य प्रथमे पूर्वस्मिन् मासि शिवे,  
नभस्य भाद्रपदस्य प्रथमे आश्विने, सहस्यस्य पौषस्य प्रथमे अग्रहायणे इत्यर्थः ;  
पक्षेऽस्मिन् “मधौ” इत्यादि अत्युष्णमाषवचनमनुगृहीतं भवेदिति ॥ ७-९ ॥

संशोधनानुपयोगिकालमाह, अत्युष्णेति ।—हिमागमः हिमन्तः । विकल्पकाः  
व्यापत्तिजनकाः, कालस्यात्युष्णवर्षमोक्षत्वात् द्रव्याणां वीर्याल्पभावात् अत्यर्थं  
शुष्कादिलाह, यदुक्तं सुश्रुते—“तत्र वर्षासु शीषधस्य वृद्ध्याऽल्पव्रीर्याः” इत्यादि ।

उपयुक्तकालमाह—

साधारण-ऋतुवयनिर्देशः ।—

प्राहट् शुचिनभौ ज्ञेयौ शरदूर्जसहौ पुनः ।

फाल्गुनश्च मधुखैव वसन्तः शोधनं प्रति ॥

स्वस्थवृत्तिर्माभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु ॥ १० ॥

सम्यक् वसनलक्षणम् ।—

क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यक् वसितः स इष्टः ।

हृत्पाश्वस्पूर्वोर्ध्वमार्गशुद्धौ तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ ११ ॥

आम्नाशयस्थः कफस्तस्मात् कफलुप्त्या तस्य प्रथमोद्वेगः, ततस्तदधः पित्ताशयस्तस्मात् पित्तं, पक्वाशयस्तदधस्ततोऽनिलः एति आगच्छति, क्रमादित्युक्तमाह ।

“ता एषौषधयः कालपरिणामात् परिणतबीज्यां बलबल्यो हेमन्ते भवन्ति, आपश्च प्रसन्नाः क्षिप्त्वाः अत्यर्थं गुर्व्यः” इत्यादि । “ता एषौषधयः निदासि निःसारा रुक्षा अतिमात्रं लघ्वो भवन्ति” इत्यादि ॥ ८ ॥

संशोधनोपयोगिकालमाह, प्राहडित्यादि ।—शुचिः आषाढः । नभः श्रावणः । ऊर्जः कार्तिकः । सङ्गः अग्रहायणः । मधुः चैत्रः । शोधनं प्रति वसनादिक-सुदृश्य एतत् साधारणम् ऋतुवयं ज्ञातव्यम् ; यदाह चरकः,—“अत्युष्णवर्षशीता हि यौष्णवर्षाहमागमाः । तदन्तरे प्राहडाद्याः क्रियाः साधारणास्तथाः ॥” इति, अथ साधारणा इति अनुद्भूतोष्णशीतवर्षा इत्यर्थः, साधारण ऋतौ वसनादीनामुत्कर्ष-सिद्धत्वात् इति । सुश्रुतेऽप्युक्तं—“वर्षाहेमन्तयोष्मेषु सञ्चितानां शरदसन्प्राहट्सु च प्रकुपितानां दीषाणां निर्हरणं कर्तव्यम् । हरेत् वसन्ते ज्ञेयांश्च द्विजं शरदि निर्हरेत् । वर्षासु शमयेत् बाधुं प्राग्विकारसमुच्छ्रयात् ॥” इति, अथ वर्षाशब्देन प्राहट् । स्वस्थवृत्तिं स्वस्थचर्यां, स्वस्थस्व स्वाच्छास्त्रवृत्तयर्थं कालिखेतेषु वसनादिर्विधेयः । व्याधौ व्याध्यवस्थाया पुनः व्याधिवशेन व्याध्यनुसारेण, यदा वसनादिकं कर्तव्यं बुध्येत, तदैव कारयेदिति ॥ १० ॥

वसनस्य सम्यग्योगलक्षणमाह, क्रमादिति ।—क्रमादिति वचनेन अथोक्त-लक्षणज्ञानेन कफाद्यागमनं स सम्यग्योगलक्षणमिति बोधयति ; अतः कफादूर्ध्वं यदा पित्तं गतं जातं, तदा तत्पिमागमनेऽपि सर्वाणि श

वसनगुणाः ।—

कफप्रमेकस्वरभेदतन्द्रा-निद्राऽऽस्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः ।

गुरुत्वकासग्रहणौप्रदोषा न सन्ति जन्तोर्वमतः कदाचित् ॥ १२ ॥

असम्यग्बलमिति दोषमाह—

दुष्कटिते स्फोटककोठकण्डू-

हृतखाविशुद्धिर्गुरुगात्रना च ।

हृत् हृदयं, खमिन्द्रियम्, एतयोरविशुद्धिरित्यर्थः, अतः सर्वेन्द्रियस्या-  
विशुद्धित्वं सामान्यात् ।

अतिवमिति दोषमाह—

तृणमोहमूर्च्छाऽनिलकोपनिद्रा-

बलातिहानिं वमितिऽति विद्यात् ॥ १३ ॥

क्रियाया उपयुक्तकालस्य अनुपेक्षणीयता ।—

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु ।

कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम् ॥

प्रयोजयेत् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ १४ ॥

अथ वसनभेषजमालामाह—

काथद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।

हृदि, किन्तु यदेवानामशयाधोगतं पित्तं वसनमानयति तदेव शुद्धिः, तच्च पित्तानयनं  
कफानयनानन्तरमेव भवति । अनेनान्तिक्षौ तथा हृत्पाश्चात्यादिना लेङ्गिको शुद्धिः  
प्रदर्शिता इति ज्ञातव्यम् । इन्द्रियमार्गं, चक्षुरादिस्रोतादि ॥ ११ ॥

सम्यग्बलमस्य गुणमाह—कफेति ॥ १२ ॥

वसनस्य अयोगे अतियोगे च दोषमाह, दुष्कटिते इति।—दुष्कटिते  
असम्यग्बलमिति । हृतखाविशुद्धिः हृदः हृदयस्य, खानाम इन्द्रियस्रोतसाच्च, अविशुद्धिः  
हृदिन्द्रियाणां गौरवमित्यर्थः ॥ १३ ॥

शोधनाहं व्याधौ निषिद्धकालेऽपि शोधनत्वावश्यं कर्तव्यतामुपदिशति, स्वस्थेति।  
अतिशीतादिकालेषु शोधनाहं आत्यधिके व्याधौ शीतोष्णादीनां यथायथं  
प्रतीकारं कृत्वा उपयुक्तां क्रियां कुर्यात्, न तु उपयुक्तकालम बोधाधीन्येनातिहास्येत्  
कृति । स च प्रतीकारो यथायथमुष्णशीतोपचारादिकम् इत्यर्थः ॥ १४ ॥

चतुर्भागावशिष्टन्तु वमनेष्ववचारयेत् ॥ १५ ॥

कृतान्तरे मातानिर्देशः ।—

काथ्यद्रव्यपले वारि प्रस्थाङ्गं पादशेषितम् ।

कर्षं प्रदाय कल्कस्य मधुसैन्धवयोस्तथा ॥

सुखाणं वितरेद्वान्तो मधुष्णं स्यान्न दोषकृत् ॥ १६ ॥

वमने उष्णमधुनः अदोषत्वे हेतुः ।—

प्रच्छर्दने निरुहे च मधुष्णं न विरुध्यते ।

अलव्यपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्त्तयेत् ॥ १७ ॥

यात्यधो दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम् ।

गुणोत्कर्षात् यात्यङ्गमपक्वं वमनं पुनः ॥ १८ ॥

\* तयारिति वमनविरेकयोः पक्वापकयोरित्यन्वयः (?) ।

वमननिषेधमाह ।—

अथ वमनयोगे कर्त्तव्ये काथ्यादोषां मानमाह, काथ्येति ।—अपयित्वा  
काथयित्वा ॥ १५ ॥

मतान्तरमाह, काथ्यद्रव्यपले इति ।—काथ्यद्रव्यपले प्रस्थाङ्गं द्रवहेतुगुणात्  
प्ररावदय, वारि दत्त्वा पादशेषितं कुप्यादित्यर्थः । मधुसैन्धवयोस्तथा इति कर्षमित्यर्थः ।  
सर्वत्रैव मधुन उष्णे प्रयोगा निषिद्धः, वमनयोगे तु तत्प्रयोगो न दोषमावहति  
इत्याह मधुष्णमिति ।—वमनस्य अपक्वस्यैव ऊर्ध्वगमनात् उष्णमधुनः अदोषावहेत्,  
यतः जाठराग्निपाके हि विरोधो भवतीति ॥ १६ ॥

दोषाभावे हेतुमाह, प्रच्छर्दने इति ।—निरुहे आश्लापने । अलव्यपाकम्  
अप्राप्तपाकः, जाठराग्निना अपक्वमेवेत्यर्थः । तयोः प्रच्छर्दनेनिरुद्धयोः निवर्त्तयेत्  
निवारयेत्, पीतो वमनयोग इति शेषः । सुष्णं मधु जाठराग्निना पक्वं धातुभिः  
सङ्गृहीतोभूतमनर्थाय भवति, वमनयोगे तु आश्वेव पीतस्य तस्योष्णमधुनो वर्द्धनिर्गमनात्  
प्राकाप्राप्त्या न दोषवत्त्वमिति । तृड्वास्तु कदाचित् अग्नेय पाकागड्या मधु  
नैव प्राप्तवन्तीति । विरेचने तु तथा न भवति इत्यतः तत्र मधुन उष्णस्य प्रयोगो  
न दोषावहो निषिद्धश्च ॥ १७।१८ ॥

\* अर्धकामिदं दुर्बोध्यमसहग्रन्थः ; मत्स्य, तयोरिति वमननिरुद्धयोरलव्यपाकयो-  
रित्यर्थः, इति पाठो भवत् ।

वसनानङ्गाः ।—

न वामयत्तमिरिक न गुल्मनं न चापि पाण्डुररोगपौडिताम् ।

स्थूलक्षतक्षोणकशातिवृद्धान्मूर्तिद्विताक्षेपकपौडिताश्च ॥ १८ ॥

रूचे प्रमेहे तरुणे च गर्भं गच्छत्यथार्द्धं रुधिरं च तीव्रं ।

दृष्टं च काष्ठे क्षिमिभिर्मनुष्यं न वामयेद्वचंसि चातिबद्धे ॥ २० ॥

वसननिषेधस्य अपवादविधिः ।—

एतदप्यजीर्णव्याधिता वाम्या ये च विषातुराः ।

अत्युत्पणकफा ये च ते च स्युर्मधुकास्त्रना ॥ २१ ॥

तमिरिकादयोपि एतादृश्यामवस्थायां वाम्या इति ज्ञेयम् ।

अवस्थाविधिषु गुणिना वसनानङ्गैः ।—

मन्दाग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता ।

सीत्क्लेशश्चाक्षुचिर्यस्य स गुल्मो वसनोपगः ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।—

वसनविरेचनाङ्गकालः ।—

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च दाहनाम् ।

वसनं रेचनञ्चैव कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ २३ ॥

वसनाङ्गाः ।—

बलवन्तं कफव्याघ्रं हृत्तासादिनिपौडितम् ।

अवास्य निर्दिशति, नेति ।—तैमिरिकं तिमिराख्यनेवरोगवन्तम् । तद्वत्  
गर्भं अचिरजाते गर्भे । गच्छत्यथार्द्धं रुधिरं च तीव्रं कर्शगरक्तपित्ते । दृष्टं च  
कोष्ठे इत्यस्य क्षिमिभिरित्यनेन सम्बन्धः ॥ १८।२० ॥

निषेधस्यापवादस्याह, एतेऽपौडिताः—मधुकास्त्रना यष्टिमधुकाक्षेपेत्यर्थः ॥ २१ ॥

निषेधवसनस्यापि गुणिनः अवस्थाविधिषु वसनाङ्गत्वसाह, मन्दाग्निरिति ।—  
गुल्मी मन्दाग्नौत्यादिलक्षणविशिष्टेन वसनाङ्गैः ॥ २२ ॥

शोथनाङ्गकालं निर्दिशति, शरदिदति ।—अथ शरत्कालादि शब्देन तत्समीपवर्तिनं  
स्वाभारणकालो बोद्धव्यः, यदुक्तं “आवणे कालं के चैवे मासि साधारणे क्रमात् ।  
श्रीशुभशाङ्गिमचितान् वायुदोलाय निर्दिशत ॥” इति । ऐषतञ्चैव इत्यत्र च-कारेण  
श्लोकाय बोध्यत्वम् ॥ २३ ॥

तथा वमनमात्माञ्च धीरचित्तञ्च वामयेत् ॥ २४ ॥

विषट्पे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लोपटेऽर्बुदे ।

विमर्दकुष्ठहृद्दाग मेहाजाणभ्रमेषु च ॥ २५ ॥

विदारिकाऽपचोऽकाम श्वाभ-पोनमवृद्धिषु ।

अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिमारिषु ॥ २६ ॥

नामातात्वाष्टपाकेषु कर्णस्त्रावेऽधिजिह्वके ।

गलगण्डेऽतोसारे च । पित्तश्लेष्मगटे तथा ॥

मिदोगटेऽरुचौ चैव वमन कारयेद्विषक् ॥ २७ ॥

वमनानङ्गी ।—

न वामनौघस्तिर्मरुतो न गुल्मो नोटरो क्लेशः ।

नार्तिवृद्धा गाभणा च न स्थूलो न क्षतातुरः ॥ २८ ॥

मटात्ता बालका रुचः क्षुधतश्च निरुद्धितः ।

उटावर्त्यङ्गुरक्ता च दुःखदः केवलानिलो ॥

पाण्डुरागा किमव्यासः पठनात् स्वरघातकः ॥ २९ ॥

अवास्यानामवस्थाविशेषे वास्यत्वनिर्देश ।—

एतेऽप्यजोर्णव्यथिता वास्या ये विषपीडिताः ।

कफव्यासाश्च ते वास्या मधुक्काथस्य पानतः ॥ ३० ॥

ग्रन्थान्तरस्यान्यां \* रसमात्रमाह—

वमनाहं निर्दिशति, बलवन्निर्दिशति ।—विदारिका क्षुद्ररोगोक्ता ॥ २४—२७ ॥

अवास्य निर्दिशति, नेत्यादि ।—दुःखदं, दुःखेन वामनौघः, यस्य वमनं क्लेशेन भवति, स इत्यर्थः । केवलानिलो दोषान्तरासंश्लिष्टातुरोगवान् । पठनात् स्वरघातकः अन्त्येष्ट्ययनात् स्वरभेदरोगवान् ॥ २८ २९ ॥

अवस्थाविशेषे अवास्यानां वास्यत्वं तथा वमनयोगश्चाह, एतेऽपीत्यादि ।—मधुक्काथस्य मधुक्काथस्येत्यर्थः । “मधुक्काथस्य पानतः” इत्यत्र “मधुक्काथपानतः” इति पाठः समीचीनः ॥ ३० ॥

मत्तान्तरे काष्ठशीतमादिमात्रानिर्देशः ।—

काष्ठपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ।

मध्यमा षष्ठिमात्रा प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनौयसी ॥ ३१ ॥

प्रसङ्गादन्योपधानाच्च मात्रामाह—

कल्कादीनामुत्तमादिमात्रानिर्देशः ।—

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया ।

मध्यमं द्विपलं दद्यात् कनौयस्कं पलं भवेत् ॥ ३२ ॥

वमने वेगिकान्तिकीशुद्धौ उत्तमादिवेगनिर्देशः ।—

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तान्ता उत्तमाः ।

षड्वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारोऽप्यवरा मताः ॥ ३३ ॥

दोषविशेषे द्रव्यविशेषनिर्देशः ।—

कफं कटुकतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।

सुखादुलवणास्त्वाणैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ ३४ ॥

[ इति वमनम् ] ।

अथ विरेचनमाह शार्ङ्गधरः,—

पातौयकाद्यस्य मात्रा यस्यान्तरोक्तामाह, काष्ठपाने इत्यादि ।—षष्ठिमा षट्-  
प्रस्था इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

वामककल्कादीनां मात्रामाह, कल्केति ।—मध्यमं तथा कनौयस्कमित्यत्र  
मानमिति शेषः ॥ ३२ ॥

वमनवेगस्य श्रेष्ठत्वादित्यमाह, वमने इति ।—वमने वमनविषये पित्तान्ताः  
अष्टौ वेगा उत्तमा मताः, कफाशयधः पित्ताशयावस्थानात् आदौ कफनिःसरणानन्तरं  
यदा पित्तं निःसर्तुमारभेत, तथा अष्टौ वारान् वमनानि भवेयुः, तदा उत्तम-  
वेगोऽवगन्तव्यः, एवं षट्चतुर्वेगाभ्यां मध्यमावरवेगावगन्तव्यौ । एतेन वमने वेगिकीं  
आन्तिकी च शुद्धिर्दृशिता इति । अत्राष्टौ वेगा इति प्रथमवेगपरित्यागेन गणनीयाः,  
यद्व्यति—“वमने तु पीतम्” इति ॥ ३३ ॥

दोषभेदात् रसबोध्यनिर्देशसुखेन वमनकारकद्रव्यविशेषमाह, कफमिति ।  
“सुखादुलवणोष्णैश्च” इति पाठान्तरं न समीचीनम् । संसृष्टं वायुना कफमित्यनेन  
केवलवायो वमनं निषिद्धमिति प्रदर्शितम् ॥ ३४ ॥

विरेचनविधिः ।—

स्निग्धस्निन्नस्य वान्तस्य दद्यात् सम्यक् विरेचनम् ॥ ३५ ॥

अस्य गुणमाह सुश्रुतः,—

सम्यग्योगयुक्तस्य विरेचनस्य गुणाः ।—

बुद्धेः प्रसादं बलमिन्द्रियाणां धातुस्थिरत्वं ज्वलनातिदोषिणम् ॥

चिराच्च पाकं वपुषः करोति विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ३६ ॥

अवान्तस्य विरेचने दोषनिर्देशः ।—

अवान्तस्य त्वधःस्रस्ती ग्रहणीं ह्यादयेत् कफः ।

मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥ ३७ ॥

ग्रहणी अग्निवहा धमनी, तात्स्थ्यादग्निमाहुः, तां ह्यादयेत् ।

अवान्तस्य विरेचने दोषपरिहारोपायः ।—

अथवा पाचनैरामं बलासञ्च विपाचयेत् ॥ ३८ ॥

विरेचनिककालनिर्देशः ।—

स्निग्धस्य स्नेहनेः कार्यं स्वेदः स्निन्नस्य रेचनम् ।

शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धेय विशेषतः ॥ ३९ ॥

विरेकनिषेधमाह—

विरेचनविधिमाह, स्निग्धेति ।—स्नेहस्वेदवसनानन्तरं विरेचनं दातव्यं, न तु प्रागेव अस्निग्धायाः ॥ ३५ ॥

सम्यक् विरेचनस्य गुणमाह, बुद्धेरिति ।—“ज्वलनातिदोषिणम्” इत्यत्र “बल-  
मग्निदोषि” तथा “वपुषः” इत्यत्र “वयसः” इति पाठः सुश्रुतसम्मतः । चिराच्चः  
पाकं वपुषः देहस्य क्षीणत्वादिरूपं परिणामं, नरापलितादिकमिति यावत् । सम्य-  
गुपास्यमानं न त्वयोगातियोगमिथ्यायोगैरुपास्यमानमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

प्रागवान्तस्य विरेचने दोषमाह, अवान्तस्येति ।—ग्रहणीम् आधारभूत-  
ग्रहणश्रितमग्निमित्यर्थः, यदुक्तं चरके—“ग्रहणा बलमग्निर्हि स चापि  
ग्रहणी श्रितः” इति । विरेचनयोगेनादौ पित्तं पश्चात् कफो निःसरति,  
धमनेन तं कफमनिःसार्यैव विरेचने दत्ते प्रभूततयाऽवस्थितः क्षामाशयस्थः  
श्च कफः अधः सरितः अग्निमाहृत्य मन्दाग्न्यादिकं जनयेदिति निष्कर्षः ॥ ३७ ॥

अकृतवसनस्य विध्यन्तरमाह, अथवेति ।—बलासं कफम् ॥ ३८ ॥



विरचनानर्हाः ।—

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षौणो भयादितः ।

श्रान्तस्तृषान्तः स्थूलश्च गभिणी च नवज्वरो ॥ ४० ॥

नवप्रसूता नारो च मन्दाग्निश्च मदात्ययौ ।

शल्यादितश्च रूक्षश्च न विरेच्यो भिषग्वरैः ॥ ४१ ॥

विरचमाह—

विरचनार्हाः ।—

जोर्णज्वरौ मरव्याप्तौ वातरक्तौ भगन्दरौ ।

अशैः पाण्डुरग्रान्ध्र-हृद्रागार्तुचिपीडिताः ॥ ४२ ॥

योनिरोमप्रमेहार्त-गुल्मप्लोहव्रणादिताः ।

विद्रधिच्छर्दिविस्फोट-विस्त्र्चौकुष्ठसयुताः ॥ ४३ ॥

कर्णनासाशिरोवक्त्र-गुदमेढ्रामयादिताः ।

प्लोहशोथान्निरोगार्ताः क्रिमिरोगानिलादिताः ॥

शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकान् नरा मताः ॥ ४४ ॥

दोषभेदेन मृदादिकोष्ठनिर्देशः ।—

बहुपित्ता मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ।

बहुवातः क्रूरकोष्ठा दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ ४५ ॥

तस्य मात्रमाह—

विरचने वैगिक्यान्तिकोशुद्धौ उत्तमादिवेगनिर्देशः ।—

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगेः कफान्तगा ॥

विरचनोपयोगिकालमाह, स्निग्धस्थेति ।—“वसन्ते च” इत्यत्र च-कारात् प्रातश्चो-  
दपि गृह्य कार्यमिति ॥ ३९—४१ ॥

विरच्यमाह, कोर्णज्वरोति ।—मरव्याप्तः विषार्तः ॥ ४२—४४ ॥

दोषभेदेन मृदादिकोष्ठतामाह, कश्चित्ति ।—मृदुः इत्यत्र कोष्ठ इति शेषः ; एवं  
ज्वर इत्यत्रापि । सः बहुवातः ॥ ४५ ॥

विरचनस्य चान्तिकी वैगिकीश्च शुद्धिं कर्तुम् उत्तमादिवेगमाह, मात्रोत्तमेति ।—  
त्रिंशद्वेगेः त्रिंशद्वारान् विरेचने सञ्जाते इत्यर्थः । कफान्तगा सा च वेगमात्रा कफोऽन्ते

वेगैर्विशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगकैः ॥ ४६ ॥

वेरेचनिककषायाणां श्रेष्ठादिमात्रानिर्देशः ।—

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमञ्च पलं भवेत् ।

पलाद्विचञ्च कषायाणां कनीयस्कं विरेचनम् ॥ ४७ ॥

आनन्दसेनस्त्रोह—

मतान्तरं दशभेदेन सहादिकोष्ठनिर्देशः ।—

पित्तेन स्यान्मृदुः कोष्ठः क्रूरो वातकफाश्रयात् ।

मध्यमः समदोषः स्यात् मात्रा योज्याऽनुरूपतः ॥ ४८ ॥

मतान्तरं उत्तमादिमात्रानिर्देशः ।—

पलन्तु श्रेष्ठमाख्यातं मध्यम्वर्द्धपलं भवेत् ।

कर्ष-मानं कनीयः स्यात् ज्ञेयं श्रेष्ठाद्यपेक्षया ॥ ४९ ॥

वमनविरेकयोश्चतुर्धा विशुद्धिमाह—

गच्छति यस्याः तादृशी, पित्तनिःसरणानन्तरं यदा कफः निःसर्तुमारभेत, तदा उत्तमवेगमाश्रया विरेचनं जातमित्यवगन्तव्यमित्यर्थः । एव विंश-दशवेगाभ्यां मध्यमो-  
वेगो बोद्धव्यो । अतः प्रथमद्विवेग पारित्यज्य वेगगणना कार्या, “द्विद्वान् सविट्काण्”  
इत्याद्युक्तेरिति । एतेन विरेचनस्य वेगिकी चान्तिकी च शुद्धिः पदार्शितेति ॥ ४६ ॥

विरेचने कषायाणां श्रेष्ठादिमात्रमाह, द्विपलमिति ।—कषायाणां वेरेचनिक-  
कषायाणाम् ॥ ४७ ॥

पित्तेनेति ।—क्रूरो वातकफाश्रयात् कफस्य स्थिरमन्दादिगुणेन सुष्ठु मला-  
निःसरणात् कफेऽपि क्रूरकोष्ठत्वमवधातव्यम् । यत् “बहुश्लेष्मा च मध्यमः” इत्यनेन  
कफबाहुल्य मध्यकोष्ठता उक्ता, तत्तु तस्य क्षिप्तत्वादिगुणेन कदाचित् मलनिःसरणा-  
दवगन्तव्या । स्मृतिवैधवदुभयमपि मतं प्रमाणम् । यदा—संसर्गसन्निपातजं  
कोष्ठं कफस्य योगबाहुल्यत्वात् वातकफे क्रूरकोष्ठत्वमवगन्तव्यं, यदाह खरनादः,—  
“वातीत्वेना स्यात् यद्वृणी क्रूरकोष्ठस्य देहिनः । पित्तला सृष्टुकोष्ठस्य योगबाहो  
तयोः कफः ॥” इति । सुश्रुतेनाप्युक्तं—“बहुवातश्लेष्मा क्रूरः” इति । समदोषः  
प्रकृतिस्थवातादिकः पुरुषः ॥ ४८ ॥

वेरेचनिककषायाणां श्रेष्ठादिमाने मतान्तरमाह, पलमित्यादि ।—श्रेष्ठाद्यपेक्षया  
श्रेष्ठबलानलाद्यपेक्षया । “कोष्ठाद्यपेक्षया” इति पाठान्तरम् । यत् द्विपलमित्यादिन  
आन्तर्वेक्ष्यं प्राक् प्रदर्शितं तत्तु सृष्टुद्व्यसाधितविरेचनयोगापेक्षया मन्तव्यम् इति ॥ ४९ ॥

शोधनचतुष्टयस्य माननिर्देशः ।—

वैगिकी मानिकी चापि आन्तिकी लैङ्गिकी तथा ।

चतुर्विधा शुद्धितक्ता वमने च विरेचने ॥ ५० ॥

वमनविरेकयोर्वैगिकीशुद्धौ जघन्यादिवेगस्य तथा विरेके

मानिकीशुद्धौ जघन्यादिमानस्य निर्देशः ।—

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगाश्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ ।

दशंव ते द्वित्रिगुणा विरेके प्रस्थस्तथा द्वित्रिचतुगुणश्च ॥ ५१ ॥

जघन्येति ।—जघन्ये वमने चत्वारो वेगाः, मध्यमे षड्वेगाः, प्रवरे-  
ऽष्टवेगाः । तथा च जघन्यविरेके दश वेगाः, मध्यमे विरेके दशत्रिगुणा  
विंशतिवेगा इत्यर्थः, प्रवरे षष्ठे विरेके दशत्रिगुणा त्रिंशद्देगा इत्यर्थः । विरेके  
दोष-मानेनापि जघन्यादित्वमाह, प्रस्थ इत्यादि ।—द्विगुणः प्रस्थो जघन्ये,  
त्रिगुणो मध्यमे, चतुर्गुणः प्रवरे इत्यर्थः ।

वमनविरेचनयोश्चतुष्कारत्वमाह, वैगिकीति ।—वैगिकी वेगेः ह्योनमध्योत्तमैः चतुः  
षडष्टसिर्वमनवेगेः तथा दशभिविशंस्त्रिंशस्य विरेचनवेगेः ज्ञायते इति तादृशी । मानिकी  
मानेन बान्द्रव्यस्य ह्योनमध्योत्तमेन प्रस्थ-सार्द्धप्रस्थ-प्रस्थद्वयमानेन तथा विरिक्तमलस्य  
द्वि-त्रि-चतुःप्रस्थमानेन ज्ञायते इति तादृशी । आन्तिकी अन्तेन वमने पित्तान्तेन  
विरेचने कफान्तेन च ज्ञायते इति तादृशी । लैङ्गिकी लिङ्गैर्धान्तिविरिक्तसम्यक्-  
लक्षणेर्ज्ञायते इति तादृशी ॥ ५० ॥

वेगानुसारेण वमनरेचनयोः मानानुसारेण च विरेचनस्य ह्योनमध्यप्रवरत्वमाह,  
जघन्येति ।—दारचतुष्टयवमनेन ह्योनवान्तत्वं षड्वारवमनेन मध्यवान्तत्वम्  
अष्टवारवमनेन प्रवरवान्तत्वमवगन्तव्यमिति । विरेके तु दशैव ते द्वित्रिगुणाः  
दशविंशत्रिंशद्वारेः विरेचने, जघन्यादित्वं क्रमात् ज्ञातव्यमिति । यद्यपि वेगानुसारतो  
विरेचनस्य उत्तमत्वादिकं प्रागेवोक्तं तथाऽप्यत्र वमनविषयकप्रसङ्गे तस्य पुनरुक्तिः  
सम्पूर्णश्रीकानुरोधात् न दोषाय इति । जघन्यादिभेदेन वमनरेचनयोर्वैगिकी  
शुद्धिमभिधाय सम्प्रति केवलविरेचनस्य जघन्यादिदोषमानभेदेन मानिकी  
शुद्धिमाह, प्रस्थस्तथा द्वित्रिचतुर्गुण्येति—दशविंशत्रिंशद्देगेः निवृत्तमलस्य  
चतुर्दायस्य मानयेत् द्विप्रस्थं त्रिप्रस्थं चतुःप्रस्थञ्च ख्यात् तदा क्रमशः जघन्यादि-  
विरेचन जातमिति निवृत्तिरवधातव्यम् । श्लोकस्यास्य प्रथमपादतत्वेन वमनरेचनयोः  
लैङ्गिकी तथा अन्यपादेन विरेचनस्य मानिकीः शुद्धिर्दर्शिता इति बोद्धव्यम् ॥ ५१ ॥

वमनादौ प्रत्यमानस्य वैशिष्ट्यनिर्देशः ।—

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।

साङ्ख्योदशपलं प्रत्यमाहुर्मनोषिणः ॥ ५२ ॥

वमनाविरेकयोरात्मकोयुद्धेवमनस्य च मानिकोयुद्धेनिर्देशः ।—

पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेकादूर्ध्वं कफान्तञ्च विरेकमाहुः ।

वमनाविरेकयोर्विषसङ्गाथा । विशेषनिर्देशः ।—

द्वित्वान् सविट्कानपनीय वेगान् मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ ५३ ॥

\* पित्तान्तमिति ।—आन्तिकी शुद्धिः । विरेकादूर्ध्वमिति—विरेके यत् प्रस्थादिना जघन्यादित्वमुक्तं तदूर्ध्वपरिमाणेन जघन्यादित्वं वमने ज्ञेयम् । कफान्तमिति ।—कफान्तमित्यनेन विरेचने आन्तिकी शुद्धिरुक्ता । विरेके द्वित्वान् सविट्कान् वेगान् अपनीय त्यक्त्वा मेयं गणनीयं

पुंवङ्गीके “प्रत्यक्षथा” इत्युक्तम्, इदानीं तं प्रत्यक्षेव विवृणोति, वमने इति ।—

प्रत्यक्षशब्देन षोडशपलमुच्यते, परन्तु वमनादिषु विष प्रत्यक्षशब्दाऽयं साङ्ख्योदशपल-  
रूपतया गणनीयः, न तु षोडशपलरूपतया इति ॥ ५२ ॥

वमनाविरेचनयोरान्तिकी तथा वमनस्य मानिकी युद्धं दर्शयति, पित्तान्तमिति ।—

औतवमनभेषजस्य यदा पित्तं निःसर्जुमारभेत, तदाऽवगतव्यस्य आनाशयस्यः दुष्टः  
कफः कार्क्ष्णेनैव निःसृतवान्, अतः सम्यक्वमनं भूतम् ; एवं विरेचनेऽपि कफान्तम्  
इति पटव्य व्याख्याऽवगतव्याऽइति । “पित्तान्तमिष्टं वमनं कफान्तञ्च विरेचनम्”  
इति पाठस्तु असम्पूर्ण एव, अकसङ्ग्रहादौ भिन्नविधपाठदर्शनात् “विरेकादूर्ध्वम्” इति  
अन्यकर्तुः स्वकृतव्याख्याया अप्रासङ्गिकत्वाच्च इति मन्तव्यम् । जघनमध्येत्यादिना  
वमनाविरेचनयोर्वेगानुसारेण लक्षमादिमात्रा निर्दिष्टा, तत्र विशेषमाह, द्वित्वानिति ।  
—द्वित्वानिति अनेकान्तिकवचनेन मलभागस्यामेयता दर्शिता ॥ ५३ ॥

\* पित्तान्तमिति ।—आन्तिकी शुद्धिः वमने पित्तान्तेन विरेचने च कफान्तेन या  
ज्ञायते तादृशी । “विरेकादूर्ध्वम्” इत्यत्र “विरेकादूर्ध्वभेषजमात्रायाः कार्यम्” इति व्याख्या  
तु असङ्गता, लेखकप्रमादादेषाऽनङ्गतिरिति मन्ये । उक्तिरियं निःसृतदोषस्य परिमाण-  
ज्ञापिका, न तु औषधस्य परिमाणज्ञापिका, तथा च अकटीकाया औषधदासः,—  
“विरेकादूर्ध्वमित्यनेन वमनस्य दोषप्रमाणोपलक्षिता मानिकी शुद्धिरुक्ता, जघन-  
मध्यप्रवरे विरेके प्रत्यक्षथेत्यादिना यद्दोषमानमुक्तं तदपेक्ष्य वमने अर्द्धमित्यर्थः” इति ।

परिमाणं कार्यं, विरेकसङ्ख्या कर्तव्येत्यर्थः । तथा वमने पीतम्  
श्लेष्मसपनीयं मलं कर्तव्यं, वेगनामित्यर्थः । विरेके पूर्वदिनाहार-  
मलविरेकात् प्रथमतः वेगद्वयं त्वयं वा परिहृत्य सङ्ख्या कर्तव्या  
इति । वमनेऽपि पीतमोषधं प्रथमवेगेन वह्निर्निसरति, अतस्तत्र  
शङ्खनीयमतोऽनन्तरं सङ्ख्या कार्येति दिक् ।

वमनस्य सम्यग्योगलक्षणानि लैङ्गिकीशुद्धिर्दिष्टः ।—

क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः ।  
हृत्पार्श्वमूढन्द्रियमागंशुद्धौ तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥५४॥

विरेकस्य सम्यग्योगलक्षणेन लैङ्गिक्यानि कोशुद्धिर्दिष्टः ।—

स्रोतोविशुद्धोन्द्रियमस्रमादौ लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ।  
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरक्तस्य भवेत् क्रमेण ॥५५॥  
प्राप्तिरिति प्रवृत्तिरित्यर्थः ।

विरेचनायोगस्य लक्षणम् ।—

प्यात् श्लेष्मपित्तानिलमस्रकोपः माटस्तथाऽग्नेर्गृता प्रतिश्या ।  
तन्द्रा तथा च्छर्दिरोचकश्च वातानुलोम्यं न च दुर्विरक्ते ॥५६॥

विरेचनायोगस्य लक्षणम् ।—

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाः सुख्यङ्गमर्दक्षमवेपनाद्याः ।

क्रमात् कफ इति ।—व्याख्यातोऽयं प्राक् ॥ ५४ ॥

विरेकस्य सम्यग्योगलक्षणमाह. स्रोत इत्यादि ।—स्रोतोविशुद्धिः शिरा-  
धमन्यादिच्छिद्राणां स्फुटोभावः । लघुत्वमित्यत्र देहस्य मलाशयस्य चेति शेषः ।  
मूर्जोऽग्निः प्रवलाग्निः । क्रमेण विट्पित्तकफानिलानां प्राप्तिः षादौ मल ततः  
पित्तं ततः कफः ततोऽनिलो निसरति चेत् स सम्यग्विरक्तो भवत्यर्थः ।  
अवाले वायुनिसरणं विट्पित्तादिनिःसरणेन रित्तकोष्ठतया ज्ञातव्यमिति ।  
प्रदर्शितक्रमलङ्घनेन विडादिप्रवृत्तौ तु न सम्यग्योगलक्षणं भवतीति ज्ञातव्यम् ।  
किञ्चात्र पूर्वाङ्गेन विरेचनस्य लैङ्गिकी तथा पराङ्गेनान्तिकी शुद्धिरिति  
ज्ञेयम् ॥ ५५ ॥

निद्राबलाभावतमःप्रवेशाः सोन्मादद्विक्लाश्च विरेचितेऽति ॥ ५७ ॥

विरेकनिषिधमाह—

विरेचनानर्हाः ।—

क्षीणः क्षतोरः क्षतबालहृडा दीनोऽथ शोषी भयशीकृतमः ।

आन्तस्तृषार्तोऽपरिजाणभक्तो गर्भिण्यधो गच्छति यस्य चासृक् ॥ ५८ ॥

नवप्रतिश्यायपरीतदेहो नवज्वरी या च नवप्रसूता ।

कषायनिष्ठा न विरेचनीयाः स्नेहादिभिर्ये त्वनुपस्कृताश्च ॥ ५९ ॥

अविरच्यमानामवस्थावशेन विरेच्यत्वानर्हम् ।—

अत्यथापत्ताभिपरातदेहान् विरेचयेत्तानपि मन्दमन्दम् ।

विरेचनीयान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तेरविरेचनीयाः ॥ ६० ॥

[ इति विरेचनम् ] ।

अथ नस्यमाह—

नस्यस्य द्विविध्यं कायेऽहम् ।—

नस्यभेदो द्विधा प्राक्तो रचनं स्नेहनं तथा ।

रेचनं कर्षणं प्राक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ ६१ ॥

रेचनं कृपादीनामित्यर्थः ।

नस्यस्य निरुक्तिः पर्यायशः ।—

नस्यं तत् कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदीषधम् ।

नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ ६२ ॥

हीनातिथ्यागयुक्तधोविरक्तशीलं वयमाह, आदिति ।—गुरुता शरीरस्य कोष्ठस्य च गुरुत्वम् ॥ ५६-५७ ॥

अविरच्यमानाह, क्षीण इति ।—क्षतोरः क्षत क्षतरीगी उरःक्षतो ज्व । शोषी यक्ष्मी । अधो गच्छति यस्य चासृक् अधोगतपित्ती । कषायनिष्ठाः कषाय-रसमयनशीलाः । अनुपस्कृताः असंस्कृताः । तान् क्षीणादीन् । मन्द-मन्दं चतुःश्रया तथा ॥ ५८—६० ॥

पचकमंसु वसनविरचने षड्धा इदानीं नस्यमाह, नस्यभेद इति ।—रेचनं शरीरविरेचनम् ॥ ६१ ॥

नस्यस्य निरुक्तमर्थ्याग्राह्यमाह—नस्यमिति ॥ ६२ ॥

दावविशेषे नखदानकालनिर्देशः ।—

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वं मध्येऽपराह्निके ।

दिनस्य गृह्यते नखं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।—

नखस्य अवान्तरभेदनिर्देशः ।—

प्रतिमर्शोऽवपीडश्च नखं प्रथमनं तथा ।

शिरोविरेचनञ्चैव नस्तु-कर्म तु पञ्चधा ॥ ६४ ॥

प्रातमर्शलक्षणम् ।—

ईषदुच्छिङ्गनात् स्नेही यावान् वक्त्रं प्रपद्यते ।

नस्तौ निषिक्तस्तं विद्यात् प्रातिमश प्रमाणतः ॥ ६५ ॥

प्रातमर्शप्रयोजनम् ।—

प्रातिमर्शश्च नखार्थं करोति न च दोषवान् ॥ ६६ ॥

अवपीडस्य हेविष्यं निरुक्तिश्च ।—

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा मतः ।

नखदानस्य समयमाह, कफेति ।—दिनस्य पूर्वं पूर्वाह्ने कफध्वंसार्थं, मध्याह्ने पित्तध्वंसार्थं अपराह्णे च वातनाशार्थं नख दातव्यम् । आध्यायिके व्याधौ रात्रावपि नखं दद्यान्ति ॥ ६३ ॥

रचनखदानभेदेन द्विविधस्य तस्य अवान्तरभेदमाह, प्रातिमश इति ।— शिरोविरेचनमात्रं—यद्यपि अवपीडादभिरपि शिरोविरेचनं भवति, तथाऽपि यत् प्राधान्येन शिरोविरेचनाशमेव दीयते तदेष शिरोविरेचन मन्तव्यम् ॥ ६४ ॥

नखभेदप्रातिमशस्य साधनाह, ईषदिति ।—ईषदुच्छिङ्गनात् किञ्चिदाकर्षणात्, नस्तौ निषिक्तः नास्यथा प्रदत्तः, यवान् स्नेहः वक्त्रं मुखं, प्रपद्यते प्राप्नोति, प्रमाणतः साधनाशिश्व, तं नखं प्रातिमशं विद्यात् । इदन्तु स्नेहिकं नखम् ॥ ६५ ॥

प्रातिमशस्य प्रयोजनमाह, प्रातिमर्शश्चेति ।—“स्नेहनं शोधनञ्चैव द्विविधं नखमुच्यते” इति चरकवचनात् नखार्थं नखस्य स्नेहनशोधनरूपप्रयोजनसाधनायम् । अत्र च दोषवान् न च व्यापारितकृतः ॥ ६६ ॥

अवपीडनाह, शोधन इति ।—शोधनं, दोषसंशोधनः । स्तम्भनं, रक्तापत्तादौ

आपीड्य दीयते यस्मादवपीडस्ततः स्मृतः ॥ ६७ ॥

नस्यभेदस्येद्विकलनस्यस्य प्रयोगविषयः ।—

स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां तथा ।

वक्तार्थं दीयते स्नेहो नस्तः-शब्दोऽत्र वर्तते ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।—

मतान्तरे नस्यभेदनिर्देशः ।—

अवपीडः प्रथमनं द्वौ भेदावपरो स्मृतौ ।

शिरोविरेचनस्यार्थं तौ तु देयौ यथायथम् ॥ ६९ ॥

मतान्तरे अवपीडलक्षणम् ।—

कल्कोक्ततादौषधात् यः पीडितो निःसृतो रसः ।

सोऽवपीडः समुद्दिष्टः तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ७० ॥

विधिसुखेन प्रथमनस्य लक्षणनिर्देशः ।—

षडङ्गुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तथा धमेत् ।

तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्र-वातेः प्रथमनं स्मृतम् ॥ ७१ ॥

रक्तसन्धन इत्यर्थः । अवपीडस्य व्युत्पत्तिमाह, आपीड्येति ।—आपीड्य सस्यक्  
प्रोद्यति । “आपीड्य” इत्यत्र “वपीड्य” इति चक्रोक्तपाठः ॥ ६७ ॥

नस्यनामकं नस्यमाह, स्नेहार्थमिति ।—शून्यशिरसां स्नेहार्थं ग्रीवादीनां  
वक्तार्थं यः स्नेहो दीयते नस्यार्थं स्नेहिकनस्यं दीयते । अव नस्तः-शब्दो वर्तते  
नस्तः-शब्दो नस्यपर्यायक इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

मतान्तरमाह, अवपीड इति ।—शिरोविरेचनस्यार्थं शिरसो कफादिदोष-  
संशोधनार्थमित्यर्थः । तौ अवपीडप्रथमने । यथायथं यथाव्याधि विविच्येत्यर्थः ॥ ६९ ॥

अवपीडस्वरूपमाह, कल्कोक्ततादिति ।—कल्कोक्ततात् दृग्दि पेषितात्, औषधात्  
तीक्ष्णबीजौषधात् । “निःसृतः” इत्यत्र “निष्पृतः” इति पाठान्तरम् । तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः  
आर्द्रकादितोष्णद्रव्यसाधित इत्यर्थः ॥ ७० ॥

प्रथमनमाह, षडङ्गुलेति ।—षडङ्गुला षडङ्गुलदीर्घा, द्विवक्त्रा उभयतस्त्रिद्व-  
विशिष्टा । धमेत् फुल्कारं दद्यादित्यर्थः, वक्त्रवातेरित्यनेनान्वयः । तीक्ष्णं कोलमित-  
मिति चूर्णमित्यस्य विशेषणम् । कोलप्रमाणं तीक्ष्णद्रव्यकृतं चूर्णम् उभयत-  
स्त्रिद्वविशिष्टायां नलिकायां निधाय नासापुटे संस्थाप्य मुखेन फुल्कारं  
दद्यादिति ॥ ७१ ॥



वैरेचनस्य विषयनिर्देशः ।—

कृङ्गजगते रोगे कफजे च स्वरक्षये ।

अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पौनसे ॥

श्रीयापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम् ॥ ७२ ॥

क्षेदिकनस्य विषयः ।—

भीरुस्त्रीकशवालानां नस्यं क्षेहेन शस्यते ॥ ७३ ॥

अवपीडनस्य विषयः ।—

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां सविषे ज्वरे ।

सनोविकारे क्रिमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥ ७४ ॥

प्रघमनस्य विषयः ।—

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विमंजेषु च दीयते ।

चूणं प्रघमनं धीरेस्तद्धि तौक्ष्णतरं यतः ॥ ७५ ॥

नस्यमेदक्षेदिकनस्य सावानिर्देशः ।—

नस्यस्य क्षेदिकस्यात्र देयास्वष्टौ च विन्दवः ।

प्रत्येकशो नस्तृकयोर्नृणामिति विनिश्चयः ॥ ७६ ॥

शिरौवैरेचनस्य विषयमाह, कृङ्गजगते इति ।—नस्यं वैरेचनं शिरौ-  
वैरेचनायै नस्यमित्यर्थः ॥ ७२।७३ ॥

अवपीडस्य विषयमाह, गलरोगे इति ।—निद्रायां निद्राधिक्ये । सविषे ज्वरे  
विषजे ज्वरे । “सविषे ज्वरे” इत्यत्र “विषमज्वरे” इति पाठान्तरम् ॥ ७४ ॥

प्रघमनस्य विषयमाह, अत्यन्तेति ।—तत् प्रघमनम् ॥ ७५ ॥

नस्याभिधेयस्य क्षेदिकनस्यस्य सावामाह, नस्यस्येति ।—प्रत्येकशः नस्तृकयोः  
प्रतिनासारन्ध्रे इत्यर्थः, अष्टौ विन्दवः क्षेदमध्ये तर्जनीपर्वयुग्मनिमज्जनेन  
आवाञ् क्षेदः उत्थितो भवेत्, स विन्दुः, एवमष्टौ विन्दवः शक्त्यपरपर्यायाः  
एकैकस्मिन् नासादिवरे दातव्या इति । यदुक्तं—“कराङ्गुलीपर्वयुग्मं द्रवमध्ये  
निमज्जयेत् । तत्राञ् आबद्धतिष्ठेत् द्रवं तत विन्दुमश्नकम् ॥ नस्ये तु विन्दव-  
श्चष्टौ तर्जनीपर्वयुग्मजाः । क्षेदस्य नावा सा शक्तिर्नस्यं नावनमुच्यते ॥ शक्तिश्च  
शिरसा शक्तिः पाणिशक्तिश्चिवा नता । अष्टौ षोडश दातव्यविन्दवः क्षमशब्दाः ॥  
डातिं विन्दुवद्वापि शक्तिरिति शेषीयते । हे शक्ती परमा शक्तिः पाणिशक्तिश्च

नस्य कर्मोपयोगिवयोनिर्देशः ।—

अष्टवर्षं चान्नस्य नस्तः कर्म मयाचरेत् ।

अग्नातिवर्षादूङ्गश्च नावनं नैव दौयते ॥ ७७ ॥

निषेधमाह—

नस्थानि ८१ः ।—

तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ।

अजोर्णी दत्तवस्तिष पोतस्नेहोदकासवः ॥ ७८ ॥

क्रुद्धः शोकाभितप्तश्च तृषार्त्ता वृद्धबालकौ ।

विगावरोधौ स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥ ७९ ॥

[ इति नस्यम् ] ।

अथानुवासनमाह—

अनुवासनविधिः ।—

भवेत् सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् ।

विरिक्तस्त्वनुवास्यः स्यात् सप्तरात्रात्परं सदा ॥ ८० ॥

अन्यत्र चोक्तम्—

विरचनात् सप्तरात्रे गते जातबलाय वै ।

क्लृप्ताहाराय सायाह्ने वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ ८१ ॥

अनुदिनं दीयते इत्यनुवासनः ।

शुभा ॥” इति । अक्रसङ्ग्रहे तु “शक्तिष पाणिशक्तिष मावास्तिसः प्रकीर्त्तिताः” इति श्लोकार्द्धमधिकतया दृश्यते । विन्दुशक्त्यादीनां स्वरूपनिर्णये बहुबो मतभेदा दृश्यन्ते ॥ ७६ ॥

नवोपयोगिवयो निर्देष्टमाह, अष्टेति ।—कैषाश्चिन्त्यते आ सप्तवर्षादारब्ध नस्यं क्वातव्यनिति ; यदुक्ते—“न नस्यमूनसप्तान्ये नातीताग्नीतिवत्सरे” इति ॥ ७७ ॥

नस्थानि ८१नाह, तथेति ।—“क्वातुकामः” इत्यत्र “शान्तकामः” इति पाठे—शान्तः निवृत्तः, कामः इच्छा, नस्यग्रहणे इति शेषः, यस्य सः शान्तकामः ॥ ७८ ७९ ॥

अथानुवासनविधिमाह, भवेदिति ।—सुखोष्णस्यैव वस्तिरिति शेषः, वस्तिः सुखोष्णः कार्यः, तथा कृति सहसा सुखं निरेति । अक्रसङ्ग्रहे तु अस्य—“स तु सैववर्षेण शताह्नेन च संयुतः” इति पूर्वाह्णो दृश्यते । अस्यैव योगस्य सुखनिर्गमनलोकेः परिभाषा—आमोदशस्थाने श्लोकार्द्धसास्य सन्निवेशः कस्यापि लेखकस्य प्रमादकृत इति मन्ये ॥ ८० ८१ ॥

वस्तिनेत्रस्य उपादाननिर्देशः ।—

सुवर्ण-रीत्य-तपु-ताम्र-रीति-कांस्थायसास्थिद्रुमवेणुदन्तेः ।

नलैर्विषाणैर्मणिभिस्तु तैस्तैः काव्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥ ८२ ॥

वयोभेदेन वस्तिनेत्रस्य परिमाणादिनिर्देशः ।—

षड्-द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि षड्-विंशति-द्वादशवर्षजानाम् ।

स्युर्मङ्ग-कर्कशु-सतीनवाहि-च्छिद्राणि वर्त्यापिहितानि चापि ॥ ८३ ॥

यथावयोऽङ्गुलकनिष्ठिकाभ्यां मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।

ऋजूनि गापुच्छसमाकृतौनि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि ॥ ८४ ॥

कर्णिकाग्रव्यवस्था वस्तिपुटकस्योपकरणानि च ।—

स्यात् कर्णिकैकाऽग्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते वस्तिनिबन्धने हे ।

वस्तिनेत्रस्य सामर्थ्याद्, सुवर्णेति ।—तपुः वङ्गम् । रीतिः पित्तलम् । आशयं  
कोटम् । अस्थि इत्यादीनाम्, एवं दन्तमपि । विषाणेः मण्डिषादिशङ्कैः ।  
सुकर्णिकानि वस्तिपुटवन्धनाय कर्णद्वययुक्तानौत्यर्थः ॥ ८२ ॥

वयोभेदेन वस्तिनेत्रस्य दैर्घ्यादिकं निर्दिशति, षडित्यादि ।—षड्-द्वादशाष्टाङ्गुल-  
सम्मितानि षड्-विंशति-द्वादशवर्षजानाम् इति यथासङ्गं नेत्रस्य दैर्घ्यमवगन्तव्यम् ।  
एव मुद्रादिवाहिच्छिद्राणि इत्येवमपि यथासङ्गत्वं अवगन्तव्यम् । कर्कशुः क्षुद्रबदरम् ।  
सतीनो वर्णलक्षणायः । वर्त्या द्रव्यान्तरप्रवेश-वस्तिद्रव्यनिर्गमननिरासार्थं वस्त्रादीनां  
वर्त्या इत्यर्थः । “वर्त्या” इत्यत्र “वस्त्रैः” इति पाठः—वस्त्रैः चर्मभिः, पाठोऽयं न  
शरकादिसम्मतः ; पिहितानि आच्छादितानि, नेत्राणि इत्यस्य विशेषणम् । वयो-  
ऽनतिक्रमेति यथावयः वयोऽनुवृत्तित्वर्थः, मूले अनुवायस्य स्वाङ्गुष्ठपरमाणां अग्रं  
च स्वकनिष्ठाङ्गुलिपरिमाणां परिणाहवन्ति विशालताविशिष्टानि, स्थूलानौत्यर्थः ।  
ऋजूनि सरलानि । गोपुच्छसमाकृतौनि क्रमशः सूक्ष्माणि । गुडिकासुखानि  
गुडिकावत् वर्तुलाकारमुखानि ॥ ८३-८४ ॥

सुकर्णिकानि नेत्राणि काव्याणि इत्युक्तं, सा कर्णिका कुत्र काव्या इत्यपेक्षाया-  
माह, स्यादिति ।—अग्रचतुर्थभागे नेत्रस्य मूलादारभ्य तृतीयभागानन्तरं, षडङ्गुल-  
दीर्घनेत्रस्य सार्धचतुरङ्गुलात् परमित्यर्थः, एका कर्णिका काव्या, गुदमध्ये

कारङ्गो माह्वहारिणी वा स्यात् शीकरो वस्तिरजस्य वाऽपि ॥ ८५ ॥

वस्तिपुटकस्य स्वरूपादिकम् ।—

दृढस्तनुर्नष्टशिरः विगन्धः कषायरक्तश्च मृदुः सुगुहः ।

मृणां वयो वीक्ष्य यथाऽनुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुवहसूत्रः ॥ ८६ ॥

ब्रणवस्तिनेवस्य परिमाणादिनिर्देशः ।—

ब्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्यात् श्लक्ष्णमष्टाङ्गलोन्मितम् ।

मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्ष-नलिकापरिणाहि च ॥ ८७ ॥

वास्तनेवस्य यन्मान्तरोक्तम् उपादानम् ।—

नेत्रं कार्यं सुवर्णादि धातुभिर्वृक्षवेणुभिः ।

गलैर्दन्तेर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥ ८८ ॥

वयोभेदेन यन्मान्तरोक्तनेत्रपरिमाणादिकम् ।—

एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मात्रा षडङ्गुलम् ।

कारङ्गो माह्वहारिणी प्रवेशनिरोधायम् । मूलाश्रिते वस्तिनिवन्धनाद्यै र्वे कर्णिके कार्यम् ।

कारङ्गः वज्रगोभजः । अणस्य ऋगस्य ॥ ८५ ॥

दृढं इत्यादि ।—तनुः सूक्ष्मः, नष्टशिरः शिराविरहितः, समुद्धतशिरासमूह इत्यर्थः, कषायश्च त्रिक्लादिकषायद्रव्यभावनया, रक्तः रञ्जितः, अत एव विगन्धः विगतपूतिगन्धः । सुगुहः मलिनताविरहितः । यथाऽनुरूपं वयोऽनुरूपम् । नेत्रेषु वस्तिनेत्रेषु, सुवहसूत्रः मुदृढवन्धनसूत्रः, वस्तिर्योष्यः । अयमग्रे एककर्णिकायुक्ता कनिष्ठाङ्गुलिपरमावस्थानां मूले च कर्णिकादयवतीम् अङ्गुष्ठमानस्थूलाश्च वयोऽनुरूपा षडावङ्गुलदीर्घा सुवर्णादिमयोम् ऋज्वादिनिशेषविशिष्टाश्च नलिकामेकाङ्गुल्यादि, मुद्गादिनिर्गलनाच्च किद्रश्च तत्र कार्यम् ; दाह्यादिगुणविशिष्टा जरद्वयादीनामन्यतमस्य वस्तिं नलिकायास्तस्याः मूलकर्णिकयोर्दृढसूत्रेण बध्नायात् इति निष्कर्षः ॥ ८६ ॥

शोधनवस्तिमुक्ता नाडोत्रये दीयमानं वस्तिं विवर्णयति, ब्रणवस्तिरिति ।—ब्रणं ब्रणरोगे, नाडोत्रये जाते दीयमानो वस्तिः ब्रणवस्तिः । मुद्गच्छिद्रं मुद्गप्रवेशाच्छिद्रविशिष्टम् । “मृदुच्छिद्रम्” इति पाठे—स्त्वच्छिद्रमित्यर्थः । गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि गृध्रस्य पक्षे वा नलिका श्लक्ष्णवर्णुलरोमरहितांशनिर्गन्धः, तदन्तं स्थूलम् ॥ ८७ ॥

शोधनवस्तिनेत्रे यन्मान्तरोधं नेत्रस्य उपादानं परिमाणादिकञ्चाह, नेत्रमित्येव ।

ततो द्वादशकं यावत् मानं स्यादष्टसमितम् ॥ ८९ ॥

ततः परं द्वादशभिरङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता ।

सुक्ष्मच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिरन्ध्रकम् ॥ ९० ॥

यथासङ्गं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ।

आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ ९१ ॥

कनिष्ठिकापरोष्णाहमये च गुड़िकामुखम् ।

तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥

योजयेत्तत्र वस्तिस्तु बन्धद्वयविधानतः ॥ ९२ ॥

वस्तिपुटकस्य उपकरणादिनिर्देशः ।—

सृगाजशूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।

मूत्रकोषस्य वस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः ॥

कषायरक्तः सुसृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ९३ ॥

अन्यच्च ।—

निरुद्धस्य द्रव्यं वस्तिनिवृत्तिश्च ।—

कषायक्षीरतैलेर्यो निरुद्धः स निगद्यते ।

वस्तिभिर्दीयते यस्मात् तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ॥ ९४ ॥

वस्तिद्वयस्य प्रयोगक्रमः ।—

तद्वानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ।

पूर्वमेव ततो वस्तिर्निरुद्धाख्यो भविष्यति ॥ ९५ ॥

कलायाभं वलुङ्कलायाभम् । तदलाभेन मूत्रकोषवसाप्राप्त्या चर्मजः सृगादीनां  
ज्वरमविनिमित्तः ॥ ८८—९३ ॥

आस्थापनापराख्यनिरुद्धवसेर्द्रव्यं वस्तिनिवृत्तिश्चाह, ज्ञपार्थित ।—“कषाय”  
शब्दस्य “वस्तिस्तु” इति पाठान्तरम् । वस्तिभिः सृगादीनां मूत्रकोषमयेव वस्ति-  
र्निमित्तकः ॥ ९४ ॥

वस्तिद्वयस्य प्रयोगक्रममाह, तत्रेति ।—पूर्वमेव इति छेदः । अनुवासनाख्यो यो  
वस्तिः, स एव पूर्वमेव कथ्यते, आस्थापनात् प्रागेव दीयते इत्यर्थः । ततः अनुवासना-  
ख्येन ॥ ९५ ॥

उत्तरवस्तिः ।—

निरुद्धादुत्तरश्चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः ॥ ८६ ॥

मात्रावस्तेमांनानिदेशः ।—

अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ।

पल्लव्यं तस्य मात्रा तस्मादर्द्धोऽपि वा भवेत् ॥ ८७ ॥

अनुवासनार्हानर्हाः ।—

अनुवास्यसु रुद्धः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ।

नानुवास्यसु कुष्ठी स्थान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ ८८ ॥

आस्थापनानुवासनानर्हाः ।—

नास्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादवृद्धयुताः ।

शीथमूर्च्छाऽरुचिभय-श्वासकासक्षयातुराः ॥ ८९ ॥

सम्यक् प्रयुक्तस्य वस्तेर्गुणाः ।—

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ।

कुरुते परिवृद्धिश्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ९० ॥

अनुभेदे स्नेहवस्तेः क्षालनिदेशः ।—

दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ।

ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनः ॥ ९१ ॥

उत्तरवस्तेः स्वरूपं निरुक्तिमाह, निरुद्धादिति ।—निरुद्धादुत्तरश्चैव निरुद्धाजलनर-  
मित्यर्थः ।—उत्तराभिधो वस्तिः उत्तरवस्तिः, स च मूत्रहारिण दीयः ॥ ८६ ॥

मात्रावस्तेः स्वरूपं मात्रावाह, अनुवासनेति ।—तस्य मात्रावस्तेः ॥ ८७ ॥

अनुवासनीयमाह, अनुवास इति ।—केवलानिली दीघान्तरासंस्मिष्टवातरोगी ।  
निषिद्धानुवासनार्हानर्हा—नेति ॥ ८८ ॥

वस्थानर्हानाह—नास्थाप्येति ॥ ८९ ॥

वस्तिगुणमाह, शरीरोपचयमिति ।—सम्यगुपासितः सम्यक्सेवितः, यथायथं  
क्षेप इत्यर्थः ॥ ९० ॥

अनुभेदे स्नेहवस्तिदानसमयमाह, दिवेति ।—स्नेहवस्तिः अनुवासनवस्तिः ॥ ९१ ॥

अनुवाचने अतिस्निग्धभोगस्य अपकारितानर्देशः ।—

न चातिस्निग्धमशनं भाजयित्वाऽनुवासयेत् ।

मदं मूच्छाञ्च जनयेत् द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ १०२ ॥

अधोगातियोगयुक्तयोर्दोषानर्देशः ।—

हीनमात्रावुभौ वस्तौ नातिकार्यं करोी स्मृतौ ।

अतिमात्रौ तथाऽऽनाह-क्षमातीसारकारकौ ॥ १०३ ॥

अनुवासनस्नेहस्य उत्तमादिमासानर्देशः ।—

उत्तमस्य पलैः षड्भिः मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ।

पलैर्काष्ठेन हीना स्यादुक्ता मात्राऽनुवासने ॥ १०४ ॥

अन्यच्च ।—

वयोभेदे निरुद्धस्य मासानर्देशः ।—

निरुद्धमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरं परम् ।

प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत् षट्प्रसृतास्ततः ॥ १०५ ॥

प्रसृतं वडयेदूर्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु ।

आ-सप्ततरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ १०६ ॥

अनुवाचनात् प्राक् अतिस्निग्धभोगस्य निषेधयति, न चेति ।—द्विधा भाज्य-  
विधया वलिविधया च इत्यर्थः ॥ १०२ ॥

अधोगातियोगयुक्तयोः वस्त्याः दोषमाह, हीनेति ।—उभौ आख्यापनाजु-  
वासनाख्यौ ॥ १०३ ॥

अनुवासनार्थं दयोषधस्य उत्तमादिमासानाह, 'उत्तमस्येति ।—उत्तमस्य उत्तम-  
बलानलविशिष्टस्य । एव मध्यमस्यापि व्याख्या कथ्या । पलैर्काष्ठेन सार्द्धपलं ॥ १०४ ॥

वयोभेदेन निरुद्धमात्रमाह, निरुद्धति ।—प्रथमं वत्सरं एकवर्षीयस्य शिशोः ।  
प्रकुञ्चः पलम् । परं प्रथमवर्षादनन्तरम् । यावत् षट्प्रसृताः द्वादशपलपर्यन्तम् ;  
तेन एकवर्षात् द्वादशवर्षे यावत् एकैकपलवृद्ध्या द्वादशपलं भवेदित्यर्थः । ऊर्ध्वं  
द्वादशवर्षादूर्ध्वमित्यर्थः, प्रत्यब्दमेकैकं प्रसृतं कृत्वा वडयेत् यावत् द्वादशप्रसृता भवन्ति ;  
द्वादशेति छेदः, तेन द्वादशादूर्ध्वं त्रयोदशवर्षमारभ्य अष्टादशस्य अष्टादशवर्षीयस्य  
प्रसृतं पलद्वयं कृत्वा वडयेत्, तेन त्रयोदशवर्षादारभ्य अतिवर्षे पलद्वयवृद्ध्या  
अष्टादशप्रसृतं अनुवेतिपक्षानि मात्राः स्मृतव्यः । आ-सप्ततेः सप्ततिवर्षपर्यन्तम्, इदं

अनुवासनस्य सादानिर्देशः ।—

यथायथं निरुद्धस्य पादो मात्राऽनुवासने ॥ १०७ ॥

अनुवासनस्य सम्यग्योगलक्षणम् ।—

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वै ।

विना पीडां त्रियामस्यः स सम्यगनुवासितः ॥ १०८ ॥

अनुवासनस्य अयोगातिथोगलक्षणम् ।—

विष्टब्धानिलविष्णुमूत्रः स्नेहो ह्रीनेऽनुवासने ।

दाहक्षमपिपासार्ति-करस्यात्यनुवासने ॥ १०९ ॥

निरुद्धानुवासनयोरतिप्रयोगे दोषनिर्देशः ।—

स्नेहवस्तिं निरुद्धं वा नैकमेवातिशीलयेत् ।

स्नेहात्पित्तकफोत्क्षेदौ निरुद्धात् पवनाद्भयम् ॥ ११० ॥

अनुविंशतिपलं मानम् । परं सप्ततेरुद्धे, दशैव प्रकृताः विंशतिपलानि नात्रा प्रयोज्या इत्यर्थः ॥ १०५।१०६ ॥

निरुद्धानुवातिदेशेन अयोमेदे अनुवासनस्य सादानाह, यथायथमिति ।— यथायथं यथावयः, निरुद्धस्य पादो मात्राऽनुवासने निरुद्धस्य या मात्रा, अनुवासने तस्य पादमात्रा देया, तेन प्रथमे वत्सरे अनुवासनस्य कर्षमात्रा, एवं कर्षाभिवृद्ध्या द्वादशवत्सरे प्रकुञ्चयथं मात्रा स्यात् । एवं त्रयोदशादिष्वपि एतदनुसारेण मात्रा निर्येया इति ॥ १०७ ॥

सम्यगनुवासनलक्षणमाह, सानिल इति ।—प्रत्येति प्रत्यागच्छति, वह्निर्देशमिति शेषः, वहिरागच्छतीत्यर्थः । “प्रत्येति” इत्यत्र “प्राप्नोति” इति पाठान्तरम् । त्रियामस्यः पक्षाशये एव प्रकृत्यर्थं कृतावस्थानः । “विना पीडां त्रियामस्यः” इत्यत्र “ऊषाचोषो विना शोभन्” इति सुसृते तथा “उपद्रवं विना शोभन्” इति च शार्ङ्गधरे पाठः ॥ १०८ ॥

ह्रीनात्यनुवासनयौलक्षणे आह, विष्टब्धेति ।—विष्टब्धानिलविष्णुमूत्रः विष्टब्धानि अनिलविष्णुमूत्राणि यस्मात् तादृशः, स्नेह इत्यस्य विशेषणं, वातमूत्रपुरीषाणां क्षमकरः इत्यर्थः ॥ १०९ ॥

केवलानुवासनस्य केवलाख्यापनस्य वा अतिप्रयोगनिषेधमाह, स्नेहवस्तिमिति ।— एकमेव परस्परानन्तरितम् । स्नेहात् अनुवासने प्रयुक्तात् स्नेहादित्यर्थः । पित्तकफोत्क्षेदः पित्तकफयोरुद्गमः । “स्नेहात् पित्तकफोत्क्षेदः” इत्यत्र “स्नेहात् पित्तकफोत्क्षेदः”



अनुवासनार्हः ।—

अनास्थाप्या येऽभिधेया नानुवाच्याश्च ते मताः ।

विशेषतस्त्वमी पाण्ड-कामला-मेह-पीनसाः ॥ १११ ॥

निरन्नग्नौहविड्भेदि-गुरुकोष्ठकफोदराः ।

अभिथन्दभृशस्थूल-क्लिमिकोष्ठाव्यमरुताः ॥

पीते विषे गरेऽपच्यां श्लोपदौ गलगण्डवान् ॥ ११२ ॥

आध्यापनार्हः ।—

अनास्थाप्यास्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशं कृशः ।

आमातिसारी वमिमान् मंशुद्धो दत्तनावनः ॥ ११३ ॥

श्वासकासप्रसेकार्शी-हिक्काध्यानाल्पवज्रयः ।

पायुशूलः कृताहारो बद्धच्छिद्रोदकोदरी ॥

कुष्ठौ च मधुमेहौ च मासान् सप्त च गर्भिणी ॥ ११४ ॥

अवस्थानुसारेण चिकित्सायाः कर्तव्यतादिनिर्देशः ।—

न चेकान्तेन निर्दिष्टे कुर्यादभिनिवेशनम् ।

भवेत् कदाचित् कार्याऽपि विरुद्धाऽभिमता क्रिया ॥ ११५ ॥

इति तथा “उत्तक्लेशप्रिवधो स्नेहात्” इति च पाठान्तरम् । पवनाद्वयं वायुवृद्धिः, निरन्तरनिरुद्धश्च रौच्यातिशयकरत्वात् ॥ ११० ॥

अनुवासनार्हानाह, अनास्थाप्या इति ।—निरन्न, उपवासक्षितिः । गुरुकोष्ठ-  
कफोदराः गुरुकोष्ठरतः कफादुदरिष्ठश्च । आश्वमारुतः ऊरुस्तथो ॥ १११११२ ॥

आध्यापनार्हानाह, अनास्थाप्या इति ।—क्षतोरस्कः उग्रः क्षती । मंशुद्धः  
निरिक्तः, “वमिमान्” इत्यनेन वमनव्योक्तत्वात् । दत्तनावनः दत्तनमयः । “अल्पवज्रयः”  
इत्यत्र “अल्पवर्चसः” तथा “पायुशूलः” इत्यत्र “शूलपायुः” इति पाठान्तरम् ।  
बद्धच्छिद्रोदकोदरी बद्धगुदोदरी छिदान्तादरी जलोदरी च ॥ ११३ ११४ ॥

शोधनार्हं अपि कदाचिदवस्थावशात् शोधनमर्हन्ति तथा शोधनार्हं अपि  
कदाचिदवस्थावशात् शोधनं नर्हन्ति इत्याह, न चेति ।—एकान्तेन अभिनिवेशनं  
अथोक्तमेव कार्यामिति निर्वन्धमित्यर्थः । भवेत् कदाचित् कार्याऽपि विरुद्धाऽभिमता  
क्षिणा कदाचित् विरुद्धाऽपि शास्त्रानभिमताऽपि क्रिया अभिमता इष्टा, अत एव

अवस्थानुसारं निविहायाः कर्त्तव्यत्वे दृष्टान्तः ।—

कुटिं-हृद्रोग-गुल्मार्त्तं वमनं स्वे चिकित्सिते ।

अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्ठिनां वास्तकर्म च ॥ ११४ ॥

[ इत्यनुवासनः ] ।

अथ निरूहमाह—

निरूहप्रयोगस्य दिनकालादिनिर्देशः ।—

अनुवाख्य स्निग्धतरं तृतीयेऽङ्गि निरूहयेत् ।

मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ॥

अभ्यक्तस्त्रेदितोत्पृष्ट-मलं नातिबुभुक्षितम् ॥ ११७ ॥

किञ्चिदावृत्ते इत्यल्पस्त्रलिते । तृतीयेऽङ्गि प्रायोवादात्, पञ्चमेऽप्यङ्गि क्रियते ; यदाह वाग्भटः,—“पञ्चमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे” । निरूहयेदिति दोषं निर्हरेदित्यर्थः, अत एवाह सुश्रुतः, यथा—  
“दोषनिर्हरेणाच्छरौररोहणाद्वा निरूहः” इति । अस्यास्थापनमित्यधि नाम ; “वयःस्थापनादायुःस्थापनाद्वा” आस्थापनमिति सुश्रुत एव ।

कार्या भवेत्, तथा च चरकेषाप्युक्तम्—“उत्पद्यते हि साऽवस्था देशकालजन्यं प्रति । यस्यां कार्यमकार्यं स्यात् कर्म कार्थ्यञ्च वर्जयेत् ॥” इति ॥ ११५ ॥

अवस्थावशात् निविहस्य कार्थ्यत्वे दृष्टान्तमाह, कुटिरिति ।—स्वे चिकित्सिते वमनादिकित्साधिकारे । कर्त्ता दिशोग्गो निषिद्धवमना अपि यथा अवस्थावशात् कदाचित् वमनमर्हति, एवं निषिद्धवस्तयोऽपि कदाचिदात्ययिके व्याधौ बल्युचिताः भवन्ति, अतो ज्ञानवान् भिषगातुरावस्था विविच्य शोधनं प्रयुञ्जीत, निर्दिष्टे एव विषये एकात्माभिविवेचनं न कुर्व्यादितं निष्कर्षः । “कुष्ठिनां वास्तकर्म च” इत्यत्र “वास्तकर्म च योजयेत्” इति पाठान्तरमसङ्गतम् ॥ ११६ ॥

निरूहवास्तूप्रयोगस्य दिनकालादिकमाह, अनुवाख्येति ।—स्निग्धतरं सम्यक्स्निग्ध-मित्यर्थः, नास्तिस्निग्धमिति यावत्, अतिस्निग्धस्य निरूहनिषेधात् । “स्निग्धतरम्” इत्यत्र “स्निग्धतरम्” इति पाठान्तरम् । तृतीयेऽङ्गि अनुवासनान्तर्गते दिवसे । किञ्चिदावृत्ते किञ्चिदपनते इत्यर्थः । अभ्यक्तस्त्रेदितोत्पृष्टमलम् अभ्यक्तविषया क्षिप्तं मलपुराणपुरीषञ्च ॥ ११७ ॥

विरेचनादिप्रयोगे दिनावधिनिर्देशः ।—

पक्षाद्विरेकी वान्तस्य ततः पक्षात् निरुहणम् ।

सद्यो निरुद्धोऽनुवाख्यः सप्तरात्राद्विरेचितः ॥ ११८ ॥

दोषभेदान्निरुद्धाङ्गानां सावानिर्देशः ।—

मधुस्नेहनकल्काख्य-कषायावापतः क्रमात् ।

त्रीणि षट् हे दश त्रीणि पक्षान्यनिलरोगिषु ॥ ११९ ॥

पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्विपञ्च चतुष्टयम् ।

षट् त्रीणि द्वे दश त्रीणि कफे चापि निरुहणम् ॥ १२० ॥

स्नेहनं पक्वस्नेहः, आमस्य निषिद्धत्वात्, “न \* चामं प्रणयेत् स्नेहं स ह्यभिष्यन्दयेद्गुदम्” इति दृढबलवचनात् । पक्वस्नेहश्च वातव्याधौ निर्दिष्टः नारायण-प्रसारणी-सैन्धवादितैलादिकः, एवमनुवासनेऽपि । कल्को मदनफलादीनाम् । कषायो दशमूलादीनाम् । आवापः काञ्जिक-जम्बीर-रस-मांसरसादीनाम् । त्रीणि इत्यादि ।—वातरोगे क्रमात् यथाक्रमं मधु-

विरेचनादीनां साक्षादधिनाह, पक्षादिति ।—वान्तस्य पक्षाद्विरेकः वमनात् पञ्चदशदिवसानन्तरं विरेचनं दातव्यं, ततः विरेचनानन्तरं पक्षात् पञ्चदशदिवसान्तरं परं निरुहणं कर्तव्यम् । “ततः पक्षात्” इत्यत्र “ततः पश्चात्” इति सुश्रुते पाठः । निरुद्धः आख्यापितः, सद्यस्तृतीयेऽङ्गीत्यर्थः, “सद्यस्तद्विरेच” इति कैचित्, अनुवाख्यः, तथा विरेचितः सप्तरात्रात् सप्तदिनानन्तरम्, अष्टमे दिने अनुवाख्यः । सिग्धं स्निग्धं शुद्धं वातशिला कृतसंसर्जनं पक्षानन्तरं विरेचयेत्, ततः सप्तदिनानन्तरमनुवाख्यं तृतीये दिवसे निरुहयेत्, निरुह्य रुच्यत्वात् स्नेहनाथं निरुद्धं पुनस्तृतीयेऽङ्गि अनुवासयेत् । यस्तु अनुवासनं नाहति, स विरेचनानन्तरं पक्षात् निरुहयितव्यः, “ततः पक्षान्निरुहणम्” इत्युक्तत्वात् इति निर्गमितार्थः ॥ ११८ ॥

निरुहयसौ देयमध्वादीनां मानमाह, भवति ।—कल्कः आख्या यस्य सः कल्काख्याः कल्क इत्यर्थः, अत्र कल्का इत्यनेनेवेष्टसिद्धौ आख्याशब्देनैवं बोधयति यत् निरुहणे कल्कः एव देयः न तु कल्कभेदचर्यम् इति । आवापः प्रक्षेपः । आवापतः आवापानामित्यर्थः । अत्र “सर्वविभक्तिभ्यस्तसिल्” इत्यनेन षष्ठ्यास्तिल् ॥ ११९ ॥ १२० ॥

\* चामम् अपक्वम् । सः अपक्वस्नेहः । अभिष्यन्दयेत् स्नेदयेत् । एवमनुवासनेऽपि आमस्नेहो निषिद्ध इत्यर्थः ।

नस्त्रीणि पलानि, स्नेहस्य षट्, कल्कस्य द्वे, कषायस्य दश, तीणि च  
आवाप्यस्य । एवं पित्ते मधुनश्चचारि, स्नेहस्य च चत्वारि, कल्कस्य द्वे,  
कषायस्य द्विपञ्चेति दशेत्यर्थः, आवाप्यस्य च चतुष्टयमिति । एवं कफे  
मधुनः षट्पलानीत्यादि योज्यम् ।

शार्ङ्गधरमतमाह —

निरुद्धस्य बहुधात्वनिर्देशः । —

निरुद्धवस्तिर्वहुधा भिद्यते कारणान्तरैः ।

तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ १२१ ॥

निरुद्धस्य पद्यायादिनिर्देशः । —

निरुद्धस्यापरं नाम प्रोक्तमास्यापनं बुधैः ।

स्वस्थानस्थापनादोष-धातूनां स्थापनं मतम् ॥ १२२ ॥

निरुद्धस्य श्रेष्ठादिमावानर्देशः । —

निरुद्धस्य प्रमाणञ्च प्रस्थ पादोत्तरं परम् ।

मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनञ्च कुड्वास्त्रयः ॥ १२३ ॥

आस्थापनानर्हाः । —

अतिस्निग्धोत्कृष्टदोषः चतोरस्कः कश्चस्तथा ।

आधानच्छर्दिहिकार्शः-कासश्वासप्रपीडितः ॥ १२४ ॥

गुदशोथातीसारार्त्तो विसृचीकुष्ठसंयुतः ।

मभिणी मधुमेही च नास्याप्यथ जलोदरी ॥ १२५ ॥

आस्थापनार्हाः । —

वातव्याधावुदावर्त्तं वातासृग्विषमज्वरे ।

मूर्च्छादृणोदरानाह-मूत्रकच्छाश्वरोषु च ॥ १२६ ॥

शार्ङ्गधरोक्तनिरुद्धमाह, निरुद्धेति । — तैः कारणभेदैरित्यर्थः ॥ १२१ ॥

निरुद्धस्य नामान्तरं तस्य च निरुक्तिमाह, निरुद्धस्येति । — स्वस्थानस्थापनात्  
त्रिमासगतानां दोषधातूनां स्वस्थाने आनयनादित्यर्थः ॥ १२२ ॥

निरुद्धस्य श्रेष्ठादिमावानाह, निरुद्धस्य प्रमाणमिति । — प्रस्थं पादोत्तरं सादृशराव-  
क्ष्यम् । परम् उत्तमम् । कुड्वास्त्रयः द्वादशपलानि ॥ १२३ ॥

अनास्थाप्यानाह — अतीति ॥ १२४।१२५ ॥

वृद्धासृग्दरमग्नि-प्रमेहेषु निरुहणम् ।

शूलेऽक्षपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः ॥ १२७ ॥

निरुहप्रयोगविधिः ।—

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्निग्धमभोजितम् ।

मध्याह्ने गृहमध्ये तु यथायोग्यं निरुहयेत् ॥ १२८ ॥

निरुहे स्नेहवाक्त्रविध्यादिदेशः ।—

स्नेहवस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरुहणम् ॥ १२९ ॥

प्रयोगानन्तरं कर्तव्यनिर्देशः ।—

जाते निरुहे च ततो भवेदुत्कटकासनः ।

तिष्ठेन्मुहूर्त्तमात्रं तु निरुहागमनेच्छया ॥ १३० ॥

अनायान्तं मुहूर्त्तान्ते निरुहं शोधनेर्हरेत् ।

निरुहैरेव मतिमान् क्षारमूत्रान्नसैन्धवेः ॥ १३१ ॥

सम्यङ्निरुहस्य लक्षणमाह चिकित्सामृते यथा—

सम्यग्योजितनिरुहलक्षणम् ।—

न धावत्यौषधं पाणिं न तिष्ठत्यर्वालिप्य च ।

आस्थाप्यानाह—आतव्याधाविति ॥ १२६।१२७ ॥

प्रयोगविधिमाह, उत्सृष्टेति ।—अभोजितं “न तु भुक्तवले देयमास्थापनमिति स्थितिः । आसं तद्वि हरेत् भुक्तं हृदि दोषाय कोपयेत्” इति भुक्तवतः आस्थापन-निषेधात् । मध्याह्ने अपगतप्रायमध्याह्ने, “मध्याह्ने कश्चिदावृत्ते” इति दर्शनात् ॥ १२८ ॥

अतिदेशेन निरुहविधिमाह, स्नेहेति ।—स्नेहवाक्त्रविधानेन अलुवासनोक्त-शैत्या ॥ १२९ ॥

कृतनिरुहस्य कर्तव्यमाह, जाते इति ।—उत्कटकासनं कर्तव्यमाह, सन् उपविष्ट इत्यर्थः । कथमुत्कटकासनो भवेत् ? इत्याह, निरुहागमनेच्छया दत्तस्य ज्ञायादेवेदिनं सरणार्थम् । किञ्चित् कालं तथा भवेत् इत्याह, मुहूर्त्तमात्रम् अल्पसमयम्, विशन्नावान्तिमित्यर्थः । मुहूर्त्तान्ते अज्ञागते कर्तव्यमाह, अनायान्त-मिति ।—क्षारमूत्रान्नसैन्धवेः क्षारादियुक्तैः शोधनेः शोधनद्रव्यकृतैः । गुरुहयस्तिभि-  
रुहं हरेत् दाहयित्वेत् ॥ १३०।१३१ ॥

चिकित्सामृतधृतं सम्यक् मिश्रितस्य निरुहस्य लक्षणमाह, वेति ।—शौषर्षं मिश्रितमस्त्रादिकम् निरुहोषधं पाणिं न धावति नृशयया मृच्छालितप्रायं हस्तं न

न करोति च सीमन्तं स निरुद्धः सुयोजितः ॥ १३२ ॥

कल्केस्नेहकषायाणामविवेकाद्भिषग्वरैः ।

वस्तिस्तु कल्पितः प्रोक्तस्तस्यादानं तथाऽर्थकृत् ॥ १३३ ॥

न धावति न पृथग्भवति । सीमन्तं तैलादिरेखाम् । एतेन मधुं  
क्षिप्त्वादीनाम् अपृथग्भाव इत्युक्तं भवति, अत एवोक्तं कल्केत्यादि ।

मृदुकोष्ठे वस्तिप्रयोगविधिः ।—

पूर्वाक्तेन विधानेन गुदे वस्तिं निधापयेत् ।

विंशन्मात्रास्थितो वस्तिस्ततस्तूष्कटुको भवेत् ॥ १३४ ॥

उत्कटुको भवेदिति वस्तेरागमनाय । उत्कटुक इति उद्भूत इति  
श्लोके । \* एतच्च मृदुकोष्ठं प्रति वेगिनञ्च ।

मात्रास्वरूपनिर्देशः ।—

यावत् पर्य्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमण्डलम् ।

निमेषोन्मेषकालो वा सा मात्रा परिकौत्सिता ॥ १३५ ॥

करोतीत्यर्थः, नातितरलं भवतीति यावत्, तथा अतिसान्द्रतया ओषधं पाणिमव-  
ल्लिख्य न तिष्ठति, तथा सीमन्त सीमन्तवत् तैलादिरेखादिक, न करोति स निरुद्धः  
सुयोजितः समिञ्चितः, वस्तिदानकाले एवमप्रकारेण चेत् वस्तिद्रव्य मिश्रित भवेत्,  
तदा स एव निरुद्धः सम्यक् कार्य्यसाधकत्वात् सुयोजित इति मन्तव्यम् । अविवेकात्  
अपृथग्भावात्, सम्यक् मिश्रोभावादित्यर्थः । तस्मात् उक्तरूपेण सुयोजितस्य वस्तेः,  
आदानं प्रयोग इति यावत्, तथाऽर्थकृत् सुयोजितस्य वस्तेर्थाऽर्थः कर्मसाधन-  
रूपस्तत्कृत् । “तस्यादानं तथाऽर्थकृत्” इत्यत्र “तस्मात् दानं यथायथं कृतं” इति  
सुश्रुते पाठः ॥ १३२।१३३ ॥

मृदुकोष्ठं प्रति वस्तिप्रयोगविधिमाह पूर्वाक्तेनेति ।—पूर्वाक्तेन विधानेन उत्सृष्टा-  
निलविस्मृतं तथा न धावत्यौषधं पाणिम् इत्याद्युक्तविधानेनेत्यर्थः । विंशन्मात्रास्थितः  
वस्तिप्रयोगानन्तरं विंशद्वारं निमेषोन्मेषे यावान् समथो गच्छति तावन्तं कालमवस्थितः  
सन् इत्यर्थः ॥ १३४ ॥

विंशन्मात्रा इत्युक्तं, तस्मात् मात्रायाः स्वरूपमाह, यावदिति ।—पर्य्येति पर्य्य-  
गच्छति, परिवेष्टयतीत्यर्थः । दक्षिणं हस्ताग्रमित्यन्वयः ॥ १३५ ॥

\* एतत्—विंशन्मात्रावस्थानम् । वेगिनं—सञ्ज्ञातपुरीषवेगम् ।

अवेगिनं क्रूरकोष्ठञ्च प्रति यथा—

क्रूरकोष्ठे वस्तिप्रयोगविधिः ।—

जानुमण्डलमावेष्ट्य दत्तं दक्षिणपाणिना ।

कृष्टनेत्रच्छटाशब्दं शतं तिष्ठेदवेगवान् ॥ १३६ ॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथाऽर्हतः ।

पुटं प्रदापयेद्द्वयो बुद्ध्वा रोगवन्नावलम् ॥ १३७ ॥

कृष्टनेत्रो वह्निष्कृतनलिकः । कृष्टा “तुडो” इति ख्याता । यथाऽर्हत इति यो यावन्तं पुटमर्हति तस्मै तावन्तं पुटं दापयेदित्यर्थः ।

वस्तिनिवृत्तिविधिः ।—

सम्यङ्निरुद्धलिङ्गे तु प्राप्ते वस्तिं निवारयेत् ॥ १३८ ॥

अन्यच्च ।—

निरुद्धस्य सम्यग्योगलक्षणम् ।—

नाभिप्रदेशञ्च कटिञ्च गत्वा कुक्षिं समालोढ्य पुनश्च सृष्टः ।

संस्निह्य कायं सपुरीषदोषः सम्यक् सुखेनैति च यः स वस्तिः ॥ १३९ ॥

प्रसृष्टविगमवमसीरणत्वं रुच्यग्निवृद्धाशयलाघवानि ।

वेगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च क्लृप्तं तत् स्यात् सुनिरुद्धलिङ्गम्

॥ १४० ॥

क्रूरकोष्ठस्य अवेगितश्च अवस्थानकालनिश्चयमाह, ज्ञान्तिः ।—अवेगवान् पुरुषः वस्तिनलवह्निष्करणान्तरं दक्षिणपाणिना जानुमण्डलं वेष्टयित्वा शतच्छोटिकोपयोगिकालमपेक्ष्य ततः उत्कटुको भवेत् इत्यर्थः ॥ १३६—१३८ ॥

सम्यक्निरुद्धस्य लक्षणमाह, नाभौति ।—सृष्टं प्रयुक्तः, यः वस्तिः नाभ्यादिकं गत्वा पुनः कुक्षिं समालोढ्य कायं संस्निह्य च । “सृष्टम्” इति पाठः असाधः । “सृष्टः” “सर्वम्” इति वा साधुः । सर्वमिति पाठे—कायमित्यस्य विशेषणम् । अरके “पार्श्वम्” इति पाठः । सपुरीषदोषः दोषो वातादिः पुरीषदोषाभ्या मृदु, सुखेन प्रयत्नं विनैव सम्यक् एति वह्निरागच्छति, स वस्तिः सुप्रयुक्तः सम्यक् प्रयुक्तश्च वस्तिरित्यर्थः । आशयः मलाशयः तस्य लाघवम् । वेगोपशान्तिः व्याधिवेगोपशमनं पुरीषवेगानागमनं वा । “वेगोपशान्तिः” इत्यत्र “रोगोपशान्तिः” इति अरके पाठः ॥ १३९-१४० ॥

असम्यङ्निरुहलक्षणमाह —

दुष्प्रयुक्तनिरुहलक्षणम् ।—

स्यात् हृच्छिरोरुक् गुडकुक्षिलिङ्गे शोथः प्रतिश्या परिकर्तिका च ।  
हृल्लासिकामाकृतमूत्रसङ्गः श्वासो न सम्यक् च निरुहिते स्यात्

॥ १४१ ॥

अयोगातियोगधीरातिदेशिकलक्षणम् ।—

अयोगश्चातियोगश्च निरुहस्य विरेकवत् ॥ १४२ ॥

[ इति निरुहवस्तिविधिः ] ।

अथोत्तरवस्तिमाह, यदाह शार्ङ्गधरः,—

उत्तरवस्तेर्नैव परिमाणादिनिर्देशः ।—

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ।

द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥

मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्पपनिर्गमम् ॥ १४३ ॥

वयोभेदेन स्नेहनावानिर्देशः ।—

पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वं पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरेः ॥ १४४ ॥

असाधुनिरुहस्य लक्षणमाह, स्यादिति ।—परिकर्तिका गुदे कर्त्तनवत् पीडा ।  
हृल्लासिका हृल्लास एव ॥ १४१ ॥

अयोगातियोगयुक्तयोः निरुहयोर्लक्षणमतिदेशनाह, अयोग इति ।—विरेकवत्  
विरेचनस्य अयोगातियोगयोर्थत् लक्षणं निरुहस्यापि अयोगातियोगयोस्तदेव लक्षण-  
मिति ॥ १४२ ॥

शार्ङ्गधरेणोक्तमुत्तरवस्तिमाह, अतः परमिति ।—मूत्रमार्गेण देयी वस्तिरुत्तरवस्ति ।  
उत्तरवस्यर्थं नेत्रविधिमाह, द्वादशति ।—मध्ये नेत्रमध्यदेशे । मालतीपुष्पवृन्ताभं  
मालतीपुष्पवृन्तवत् स्थूलं शृङ्गासुखलक्ष्यं नेत्रं कायेन ॥ १४३ ॥

वयोभेदेन स्नेहनावानिर्देशः, पञ्चविंशतीति ।—पञ्चविंशतिवर्षाणामधः इति अनु-  
विंशतिवर्षपय्यन्ततिष्यर्थः । तदूर्ध्वं पञ्चविंशतिवर्षमारभ्येत्यर्थः ॥ १४४ ॥



वस्तिवस्तिप्रयोगविधिः ।—

अथाख्यापनशुद्धस्य त्वस्य स्नानभोजनेः ।

स्थितस्य जानुमात्रे च पोठेऽन्विष्य शलाकया ॥ १४५ ॥

स्निग्धया मेढ्रमार्गेण ततो नेत्रं नियोजयेत् ।

शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रेऽङ्गुलानि षट् ॥ १४६ ॥

ततोऽवपौडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रञ्च निहरेत् ।

ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमा दितः ॥ १४७ ॥

स्त्रीणां वस्तिनेत्रस्य परिभाषादिनिर्देशः ।—

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्यादङ्गुलम् ।

सुद्वप्रवेश्यं योज्यञ्च योन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥ १४८ ॥

स्त्रीवाल्वयोर्मूत्रमार्गे देयनेव प्रमाणनिर्देशः ।—

द्वाङ्गुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ।

मूत्रशक्चविकारेषु बालानामेकमङ्गुलम् ॥ १४९ ॥

यदाह वारम्भटः,—

वाग्मटमते स्त्रीणामुत्तरवस्तिप्रयोगे कालादिनिर्देशः ।—

स्त्रीणामार्त्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृता ।

विदधोत तदा तस्मादवृतावपि चात्यये ॥ १५० ॥

योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापदसहृदरे ।

वस्तिदानविधिमाह, अथेति ।—जानुमात्रे जानुप्रमाणोन्नते । “जानुमात्रेण” इति पाठे—जानुप्रमाणोन्नतया उपलक्षिते, जानुमात्रोन्नते इत्यर्थः, पोठे आसने स्थितस्य । स्निग्धया घृताद्यभ्यक्तया शलाकया, अन्विष्य अश्लथ्यादिकमनुसन्वाद्य । ततः वस्तिदानानन्तरम् । वस्तिं स्नेहादिपूर्णवस्तिपटकमित्यर्थः । निहरेत् वहिष्कुर्यात् ॥ १४५—१४७ ॥

स्त्रीणां नेत्रप्रमाणमाह, स्त्रीणां वस्ति ।—कनिष्ठिकास्थूलं कनिष्ठाङ्गुलिवत् स्थूलम् । दशाङ्गुलं दशाङ्गुलीर्घम् । सुद्वप्रवेश्यं सुद्वप्रवेशार्हच्छिद्रविशेषम् ॥ १४८ ॥

स्त्रीवाल्वयोर्मूत्रमार्गे देयस्य नेत्रस्य प्रमाणमाह, द्वाङ्गुलमिति ।—द्वाङ्गुलं मूत्रमार्गे च स्त्रीणामेव मूत्रस्रोतसि द्वाङ्गुलं नेत्रं प्रवेशयेत् । बालानां कन्धकानाम् ॥ १४९ ॥

वाग्मटोक्तं स्त्रीणामुत्तरवस्तिदानकालमाह, स्त्रीणामिति ।—योनिर्गृह्णात्यपावृता विवृता योनिः गृह्णाति, वस्तिमिति शेषः, आर्त्तवकाले जरयुमुखविकशनात् । तदा आर्त्तवकाले, विदधोत, वस्तिमिति शेषः । अश्लथावपि चात्यये योनिविभ्रंशश्चै

शूनैर्निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ १५१ ॥

स्त्रीणां योनि-मूत्रमार्गयोः बालानां मूत्रमार्गे च स्नेहमात्रानिर्देशः ।—

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपान्क्तिकौ ।

मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानाञ्च द्विकार्षिकौ ॥ १५२ ॥

स्त्रीणां वस्तिप्रयोगविधिः ।—

उत्तानायै स्त्रियै दद्याद्दृङ्मज्जान्वै विचक्षणः ॥ १५३ ॥

अप्रत्यागच्छति वस्तौ कर्त्तव्यनिर्देशः ।—

अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञिते ।

भूयो वस्ति निदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गणैः ॥ १५४ ॥

योनौ दत्तवस्तुनागमने कर्त्तव्यनिर्देशः ।—

फलवर्त्तिं निदध्यात् वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ।

सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धां शोधनद्रव्यसयुताम् ॥ १५५ ॥

वस्तिदेशदाहं वस्तिविधिः ।—

दद्यामाने तदा वस्तौ दद्याद्दस्तिं विशारदः ।

क्षीरिद्वलकषायेण पयसा शीतलेन वा ॥ १५६ ॥

आत्ययिके व्याधौ अनासंवल्लिऽपि वस्तिं विदधोत इत्यर्थः । कथं विदधोत ? इत्याह, शनैरिति ।—निष्कम्पं यथा तथा प्रयागकाले हस्तौ यथा न क्षम्येत तथा इत्यर्थः ॥ १५०।१५१ ॥

स्त्रीणां योनिमार्ग-मूत्रमार्गयोस्तथा बालानाञ्च मूत्रमार्गे स्नेहमात्रमाह, योनि-मार्गेऽपि ।—योनिमार्गेषु अपत्यपथेषु इत्यर्थः । बालानां कन्यकानाम् ॥ १५२ ॥

वस्तिदानविधिमाह, उत्तानायै इति ।—उत्तानायै ऊर्ध्वमुखशायिन्यै । ऊर्ध्वजान्वै जागृदयं सङ्कोच्य ऊर्ध्वीकृत्य च स्थितायै ॥ १५३ ॥

अनि सृते वस्तौ कर्त्तव्यमाह, अप्रत्यागच्छतीति ।—संयुक्तं शोधनैर्गणैः वस्तिशोधक-द्रव्यममूढैः संसृष्टम् । “संयुक्तम्” इत्यत्र “संयुक्तेः” इति पाठान्तरम् ॥ १५४ ॥

योनौ दत्तवस्तुवनि-सृते कर्त्तव्यमाह, फलवर्त्तिमिति ।—फलवर्त्तिं मदमफलादि-निर्मिता वर्त्तिम् ॥ १५५ ॥

द्रव्याणामनि-सरणात् वस्तिदाहं उपक्रममाह, दद्यादने इति ।—वस्तौ वस्तिदेशः । वस्तिम् उत्तरवस्तिम् । क्षीरिद्वलकषायेण न्ययोधादीनां कषायेण ॥ १५६ ॥

उत्तरवर्गैर्गुणः निबिडव्यामनिर्देशः ।—

वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामात्तेवजां रुजाम् ।

हत्यादुत्तरवस्तिस्तु नोचितो मेङ्गिनां क्वचित् ॥ १५७ ॥

अतिदेशेन सम्यग्योगलक्षणादिनिर्देशः ।—

सम्यक् दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम एव च ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहवस्तिना ॥ १५८ ॥

फलवर्त्ते स्वरूपं विधिय ।—

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठमन्निभा ।

मलप्रवर्त्तिनौ वर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ १५९ ॥

आनन्दसेनस्वाह, वस्तिमात्रा यथा—

आनन्दसेनमते उत्तरवस्त्यादीनां मात्रानिर्देशः ।—

अनुवासनभेदश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ।

पलार्द्धमुत्तरो वस्तिर्मात्रावस्तिः पलद्वयम् ॥ १६० ॥

यापना स्नेहवस्तिश्च द्वावेतौ षट्पलान्वितौ ।

पिच्छावस्तिर्भवेत् प्रस्थः पादोनः कौर्त्तितोऽपरः ॥ १६१ ॥

यापनावस्तिरिति वातविकारयापनार्थं यो वस्तिरित्यर्थः ।

अथ धूमपानविधिः—

धूमावश्यायजदोषनिर्देशः ।—

धूमः पित्तानिलौ कुर्यादवश्यायः कफानिलौ ॥ १६२ ॥

उत्तरवर्गैर्गुणमाह, वस्तिरिति ।—वस्तिरुत्तरवस्तिः ॥ १५७ ॥

सम्यग्योगादोना लक्षणमतिदेशेन निर्दिशति, सम्यगिति ।—क्रमः शिक्षित्वा-  
प्रणाली ॥ १५८ ॥

फलवर्त्ते स्वरूपमाह—घृताभ्यक्ते इति ॥ १५९ ॥

आनन्दसेनमते उत्तरवस्त्यादीनां मात्रामाह, अनुवासनेति ।—पादोनः कौर्त्तितो-  
ऽपरः अपरः एतद्वातिरिक्तसिद्धवस्त्यादिः पादोनः प्रस्थः अनुदंशः पलानौत्यर्थः ।  
“पादोनः” इत्येव “सपादः” इति पाठान्तरम् ॥ १६० ॥ १६१ ॥

अथ धूमपानविधिं वक्तुमादौ धूमावश्याययोर्दोषमाह, धूम इति ।—धूमः  
भासामुखिप्रविष्टः धूम इत्यर्थः । अवश्यायः,—अवश्यायशब्देनात्र कुत्रचित्किञ्चाऽवगतस्या,  
असृष्टशब्दात् धूममङ्घ्रिषीति संज्ञान्तरत्वाच्च ॥ १६२ ॥

धूमपानगुणमाह—

धूमपानमाश्रयाः ।—

गौरवं शिरसः शूलं पीनमोऽर्धावभेदकः ।

कर्णाक्षिशूलं कासश्च ह्रिक्काश्वामौ गलग्रहः ॥ १६३ ॥

दन्तदौर्बल्यमास्त्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः ।

पूतिघ्राणास्यगन्धश्च दन्तशूलमरोचकम् ॥ १६४ ॥

हनु-मन्याग्रहः कण्डूः क्रिमयो मुखपाण्डुता ।

श्लेष्मप्रसेको वैखर्यं गलगण्डाधिजिह्वके ॥ १६५ ॥

खालित्यं पिञ्जरत्वञ्च केशानां पतनं तथा ।

क्षवथुश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्भाहोऽतिनिद्रता ॥

धूमपानात् प्रशस्यन्ति बलं भवति चाधिकम् ॥ १६६ ॥

अकालातिपीतयोर्धूमयोर्दोषाः तत्प्रतीकारश्च ।—

रक्तपित्ताभ्यवाधिर्य-दृग्मूर्च्छामदमोहकत् ।

धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्मतः ॥ १६७ ॥

पञ्चविधधूमानां नामानि ।—

प्रायोगिकः स्नेहिकश्च वैरेचनिक एव च ।

कासहारी वामनीयो धूमः पञ्चविधो मतः ॥ १६८ ॥

प्रायोगिकः प्रयोगः स्वस्थस्य । स्नेहकारी स्नेहिकः । दोषविरचनात्  
वैरेचनिकः । कण्टकार्यादिभिर्धूमपानात् कासहरः । वमनकारी  
वामनीयः ।

धूमपानगुणमाह, गौरवमिति ।—श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः आस्त्रावः कर्णादिस्रावः ।  
अधिजिह्वकं जिह्वागतरीगभेदः । केशानां पिञ्जरत्वं पिङ्गलवर्णता, पतनमपि  
केशानाम् । क्षवथुः ह्रिक्का, “छाचि” इति लोके ॥ १६३—१६६ ॥

अकाले आतिशयेन च पीतस्य धूमस्य सप्रतीकारं दोषमाह, रक्तपित्तेति ।—  
तत्र अविधिपीतधूमजरक्तपित्तादौ ॥ १६७ ॥

कार्यभेदेन धूमस्य पञ्चविधत्वमाह, प्रायोगिकः इति ।—प्रयोगे स्वस्थस्य नित्यं  
अयोगे हितः प्रायोगिकः । वैरेचनिकः शिरःस्थकफानिःसारकः ॥ १६८ ॥

धूमोद्गोरणहारनिर्देशः ।—

वक्त्रेणैव वनेड्मं नस्तो वक्त्रेण वा पिबन् ॥ १६८ ॥

दोषाणामवस्थानविशेषे धूमपानहारनिर्देशः ।—

उरःकण्ठगतौ दोषे वक्त्रेण धूममापिवेत् ।

नासया तु पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ॥ १७० ॥

धूमपञ्चकानां द्रव्यनिर्देशः ।—

गन्धैरकुष्ठतगरैर्वर्त्तिः प्रायोगिकी मता ।

क्षौद्रिके तु मधुच्छिष्ट-स्नेहगुग्गुलुनर्जकैः ॥ १७१ ॥

शिरोविरेचनद्रव्यैर्वर्त्तिर्वैरेचने मता ।

कासघ्नैरेव कासघ्नी वामनैर्वामनी मता ॥ १७२ ॥

निषेधमाह—

धूमपानानर्हाः ।—

योज्या न पित्तरक्तात्ति-विरिक्तोटरमेहिषु ।

तिमिरोद्धानिलाध्मान-रोहिण्यो-दत्तवस्तिषु ॥ १७३ ॥

येन हारेण धूमः पातव्यः येन वा त्यक्तव्यस्तदाह, वक्त्रेणेति ।—नस्तः नापि कथं वक्त्रेण मुखेन वा धूमं पिबन् वक्त्रेणैव वनेत् छद्मिरेत्, न तु नासया वनेत् इत्येव-कारार्थः, तथाकरणे दोषश्रुतेः, यदुक्तं चरके—“प्रतिलोमं गतो ह्याय धूमो हिंस्याद्भि-श्वसुषी” इति ॥ १६८ ॥

नस्तो वक्त्रेण वा पिबन् इत्युक्तं, तत्र कुत्र नस्तः कुत्र वा वक्त्रेण पातव्य इत्या-काङ्क्षायां दोषस्य अवस्थानभेदात् धूमपानमागमाह—उरः इति ॥ १७० ॥

पञ्चविधधूमानां पृथक् पृथगुपादानसामर्थ्यामाह, गन्धैरिति ।—अकुष्ठतगरैः कुष्ठतगरविरहितैः, कुष्ठतगरयोरतितोष्णत्वेन मस्तुलुङ्गस्वावकात्वात्, गन्धैः अगुर्वादिभि-गन्धद्रव्यैः, वर्त्तिः धूमवर्त्तिः । मधुच्छिष्टं मिक्षक, “मीम” इति प्रसिद्धम् । स्नेह-शब्देनाह घृतवसथोद्ग्रहण, “वसाघृतमधुच्छिष्टे,” इति चरकवचनात् । शिरोविरेचन-द्रव्यैः श्वेताज्योतिषत्यादिभिश्चरकोक्तेः, देवदालीकट्फलादिभिर्वा । कासघ्ने वृद्धती-कण्टकार्यादिभिः सुशुतोक्तेः । वामनैः वमनकारकैः स्नायुचर्मखुरशृङ्गादिभिः सुशुतोक्तेः ॥ १७१।१७२ ॥

धूमपानानर्हा, योज्या इति ।—तिमिरः अक्षरोगभेदः । उद्धानिलः ऊर्ध्ववायुः ।

मत्स्यमद्यदधिचौद्र-चौरस्ते हविषाशिषु ।

शिरस्यभिहते पाण्डु-रोग जागरिते निशि ॥ १७४ ॥

रोहिणी कण्डरोहिणी । आशिष्विति मत्स्यादिभिः सम्बध्यते पाने भोजने च ।

अथ कवलगण्डूपधारणमाह ।

यदाह शार्ङ्गधरः,—

गण्डूपकवलयोश्चतुर्विधनाननिर्देशः ।—

चतुर्विधः स्यान्नगण्डूपः स्नेहिकः शमनस्तथा ।

शोधनो रोपणश्चैव कवलस्यापि तद्विधः ॥ १७५ ॥

गण्डूपकवलचतुष्टयमाध्यादायाणां चतुर्विधयोस्तथोद्देश्याणाञ्च निर्देशः ।—

स्निग्धोष्णैः स्नेहिको वातं स्वादुशीतैः प्रसादनः ।

पित्तं कटुस्त्वलवणैरुष्णैः संशोधनः कफे ॥ १७६ ॥

कषायतिक्तमधुरैः कटुण्यै रोपणो ब्रणे ।

चतुःप्रकारो गण्डूपः कवलस्यापि कौर्त्तितः ॥ १७७ ॥

गण्डूपकवलयोर्लक्षणगतभेदः ।—

असञ्चारी मुखे पूर्णे गण्डूपः कवलश्चरः ।

अङ्गार इत्यर्थः । दतवस्तिषु कतनिकृदवस्तिषु । शिरसि अभिहते दण्डादिभिः । प्रहते ॥ १७३-१७४ ॥

अथ कवलगण्डूपयोर्निमित्तचतुष्टयमाह, चतुर्विध इति ।—स्नेहिकः ज्वरहृगतरोमे स्नेहकारकः । शमनः द्रोषप्रसादनः । शोधनः कफनिःसारणः । रोपणः मुखस्यब्रण-  
पूरणः । कवलस्यापि तद्विधः स्नेहिकादिभेदेन चतुर्विधः ॥ १७५ ॥

स्नेहिकादीनां विषयमुपादानञ्चाह, स्निग्धोष्णैरिति ।—पित्ते स्वादुशीतैः प्रसादनः शमन इत्यर्थः । “उष्णैः संशोधनः” इत्यत्र “रूक्षोष्णैः शोधनः” इति सुश्रुते तथा “उष्णैः” इत्यत्र “रूक्षैः” तथा “कटुण्यैः” इत्यत्र “कवलः” इति अकसङ्गदी-  
घाठ ॥ १७६-१७७ ॥

कवलगण्डूपयोर्लक्षणिकभेदमाह, असञ्चारीति ।—असञ्चारी मुखारणाग्रमः गण्डूपः

तत्र द्रवेण गण्डूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥ १७८ ॥

गण्डूषे प्रत्येकचूर्णस्य कवलायै कल्कस्य च माननिर्देशः ।—

दद्यात् द्रवेषु चूर्णञ्च गण्डूषे कीलमात्रया ।

कर्षप्रमाणः कल्कश्च कवले दौघते बुधैः ॥ १७९ ॥

गण्डूषकवलाधारयोपयोगिवयोनिर्देशः ।—

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाङ्गण्डूषकवलादयः ॥ १८० ॥

गण्डूषधारणे कर्तव्यतासङ्ख्यानिर्देशः ।—

गण्डूषान् सुस्थितान् कुर्यात् स्निग्धभालगलाननः ।

मनुष्यस्त्रीन् तथा पञ्च सप्त वा दोषनाशनान् ॥ १८१ ॥

गण्डूषधारणस्य समयावधिनिर्देशः ।—

कफपूर्णास्थिता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।

नेत्रघ्नान्धस्रुतिर्यावत् तावद्गण्डूषधारणम् ॥ १८२ ॥

अतिदेशेन प्रतिहारणकवलयोर्द्वयनिर्देशः ।—

यस्यौषधस्य गण्डूषस्तस्यैव प्रतिसारणम् ।

कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलेनरैः ॥ १८३ ॥

अरः सञ्चारणवतः कवलः । द्रवेण खरसजायादिद्रुपेण । कल्केन क्षिष्टिद्रुवालोक्षितेन कल्केन ॥ १७८ ॥

गण्डूषकवलायै प्रयोज्ययोः चूर्णकल्कयोः सावामाह—दद्यादिति ॥ १७९ ॥

गण्डूषकवलापयोगिवया निर्देशमाह, धार्यन्त इति ।—कवलादय इत्यत्र आदिशब्दात् प्रतिसारणस्य यद्वचनम् ॥ १८० ॥

गण्डूषधारणस्य सङ्ख्यामाह, गण्डूषानिति ।—सुस्थितान् सुकृतानित्यर्थः । “सुस्थितान्” इत्यत्र “सुस्थिताः” इति शार्ङ्गधरोक्ताः पाठः, साधुः । स्निग्धभालगलाननः खलाटादिषु कृतस्वेद इत्यर्थः ॥ १८१ ॥

यावन्त कालं गण्डूषकवलो धार्यौ तदाह, कफेति ।—क्षेदो दोषस्य कठिनोभूत-कफस्य सङ्घातभेदनम् ॥ १८२ ॥

अतिदेशेन कवलप्रतिसारणयोर्द्वयमाह, यस्येति ।—प्रतिहारणं घृषणं, चूर्णनं । कल्कादिभिरेति श्रुतिः ॥ १८३ ॥

अथोपातिथोगयुक्तयोः गण्डपकवलधोलक्षणम् ।—

हीनयोगात् कफोत्क्लेशो रमाञ्जानारुची तथा ।

अतियोगात् मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत् ॥१८४॥

गण्डपस्य सम्यग्योगलक्षणम् ।—

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डेषु शुद्धिलक्षणम् ॥१८५॥

अन्यच्च—

कवलगण्डप्रयोल्लेखणगतभेदान्तरम् ।—

सुखं सञ्चार्यते या तु मा मात्रा कवले हिता ।

असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डेषु सा प्रकीर्तिता ॥१८६॥

अथ रक्तमोक्षणविधिः ।

अतिरक्तत्वावे दोषनिर्देशः ।—

अतिसूतो हि सृष्टुः स्याद्धारुणा वाऽनिलामयाः ॥१८७॥

विशुद्धरक्तपुष्पस्य लक्षणम् ।—

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छुत्तमव्याहतपक्त्वैगम् ।

सुखान्वितं पुष्टिवलोपपन्नं प्रसन्नरक्तं पुरुषं वदन्ति ॥१८८॥

हीनातिथोगयुक्तयोर्लक्षणमाह, हीनयोगादिति ।—पाकः शोषः इत्युभयोरेव मुखे  
इत्यनेनान्वयः ; मुखे पाकः सुखशोषश्च ॥ १८४ ॥

सम्यक्लक्षणस्य लक्षणमाह, व्याधेरिति ।—वैशद्यम् अपेक्षित्वं, सुखमेति  
शेषः ॥ १८५ ॥

प्राक् उक्तमपि गण्डपकवलधोल्लेखणमाह, सुखमिति ।—सुगमम् ॥१८६॥

रक्तमोक्षणविधिं वक्त्रनिच्छुत्तादौ अतिरक्तत्वावे दोषमाह, अतिसूताविति ।—

अनिलामया वातव्याजयः ॥ १८७ ॥

विशुद्धशोणितस्य पुरुषस्य लक्षणमाह, प्रसन्नमिति ।—इन्द्रियार्थान् रूपरसादीन्,  
इच्छुत्तं यथायथमभिनयन्तम् । अव्याहतपक्त्वैगम् अव्याहतः अप्रतिरुद्धः पक्ता  
जाठरानलः, वैगः पुरीषादीनां प्रवृत्तिर्यस्य तादृशं दीप्ताग्निं यथायथं निष्कृतमूत्र-  
पुरीषादिष्वयं यः । ‘‘पक्त्वैगम्’’ इत्यत्र ‘‘शक्तिः’’ इति पाठः, प्राणादिकः ॥ १८८ ॥



रक्तमोक्षणीपर्योगिव्याननिर्देशः ।—

मर्महीने यथाऽऽमन्न-प्रदेशे वेधयेच्छिराम् ॥ १८८ ॥

रक्तमोक्षणीपर्योगिवयः-प्रभृतिनिर्देशः ।—

न ह्यनघोडशातीत-सप्तव्यब्दसूतासृजाम् ।

अस्त्रिंशद्वेदितान्यर्थ-स्वेदितानिन्नरोगिणाम् ॥ १८९ ॥

गभिणौ सूतिकाऽजौर्ण-पित्तास्रस्वामकासिनाम् ।

अतिमारोढरच्छर्दि-पाण्डुसर्वाङ्गशोथिनाम् ॥ १९० ॥

स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु ।

नार्यान्वितां शिरां विध्येन्न तिर्य्यङ्नाप्यनुत्थिताम् ॥

नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्रात्ययिकाङ्गदात् ॥ १९१ ॥

अथ घृततैलमूर्च्छाविधिः ।

घृतमूर्च्छाविधिः,—

मूर्च्छनद्रव्याणां नामपरिभाषाटीका मूर्च्छाफलस्य च निर्देशः ।—

यथाधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रव्यैश्च

द्वयैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन ।

रक्तमोक्षणी शिरावेधव्यानमाह, मर्महीने इति ।—यथाऽऽमन्नप्रदेशे व्याधितव्यानमपीदे । “मर्महीने यथाऽऽमन्नप्रदेशेऽन्या व्यधयेच्छिराम्” इति वार्त्ताटे याठ । व्यध्यशिराणामदर्शने मर्मवजिते तत्समीपदेशे या अन्या शिरा दृश्यन्ते ता एव वेध्या इति तत्प्रायः ॥ १८८ ॥

अवेध्यशिरानाह, न हीति ।—“सप्तव्यब्द” इत्ययं “सप्तव्यर्षाब्” इति पाठः ग्रामादिकः । सूतासृजा शस्त्राद्याघातेन येषां रक्तं निःसृतं, प्राक् शिरावेधादिज्ञा या येषां रक्तं निःसारितं तेषाम् । “सर्वाङ्गशोथिनाम्” इत्ययं “सर्वाङ्गशोथिणाम्” इति पाठान्तरं न सलोचनम् । स्नेहपीते स्नेहपानानन्तरमेवेत्यर्थः, पूर्वमस्त्रिंशद्व्यं शिरावेधनिषेधात् ; अतिस्निग्धे इत्यर्थो वा । नार्यान्विता नाङ्गदास । तिर्य्यक् वक्रभावेन । अनुत्थिताम् उभयतो घन्तयेनापि स्तोथा अप्रकाशिताम् इत्यर्थः । आत्ययिकाङ्गदाक् शिरावेधनन्तरेण विपत्तिजनकात् रोगादित्यर्थः, आत्ययिके तु व्याधौ एतेष्वपि शिरा व्यधयेवेत्यर्थः ॥ १८९—१९० ॥

अथ घृततैलयोः संस्कारविशेषं विवक्षुणादौ घृतस्य मूर्च्छंशुविधिमाह, पथ्येति ।

आज्यप्रस्थं विफेनं परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराजः

तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वोध्यवत् सौख्यदायि ॥१८३॥

कटुतैलमूर्च्छाविधिः,—

मूर्च्छनद्रव्याणां नाममावादीनां मूर्च्छाफलस्य च निर्देशः ।—

वयःस्थारजनीमुस्त-विल्वटाडिमकेशरैः ।

हृष्णजोरकज्जीवेरजलिकैः सत्रिभीतकैः ॥ १८४ ॥

एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् ।

कटुतैलं पचेत् तेन आमदोषहरं परम् ॥ १८५ ॥

एरण्डतैलमूर्च्छाविधिः,—

मूर्च्छनद्रव्याणां नामपरिमाणादिनिर्देशः ।—

विकना मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका ।

ज्जीवेरघनखजूर-वटशुक्ला निशायुगम् ॥ १८६ ॥

जलिका भेषजं देयं केतकी च समं समम् ।

प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधि काञ्जिकम् ॥ १८७ ॥

तिलतैलमूर्च्छाविधिः,—

मूर्च्छनद्रव्याणां नामनिर्देशादिः ।—

क्षत्वा तैलं कटाक्षे दृढतरविमले मन्दमन्दानलेस्तत्

तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव ।

—पद्या हरीतकी । धात्री चामलकी । जलधरः मुस्तकम् । रजनी हरिद्रा । आज्यस्य घृतशरावचलुप्यम् । विफेनं निष्फेनं यथा तथा परिचपलगतं सर्वतोभावेन द्रवीभूतमित्यर्थः । किमर्थं मूर्च्छयेदित्याह, तस्यादिति—तस्यात् मूर्च्छनात् ॥१८३॥

सार्वभौतमूर्च्छनविधिमाह, वयस्येति ।—वयस्य हरीतकी । केशरं नाग-केशरम् । ज्जीवेरं बालकम् । प्रस्थे प्रस्थमिते तैले । कर्षमात्रमिति वयस्यादीनां प्रत्येकम् ॥ १८४ १८५ ॥

एरण्डतैलमूर्च्छाविधिमाह, विकसेति ।—विकना सज्जिष्ठा । वैजयन्तिका जयन्ती । घनः मुस्तकम् । वटशुक्ला वटावरोहः । निशायुग हरिद्रा दाहहरिद्राच । भेषजशुण्ठी । शाणमितमिति प्रत्येकम् । दधि काञ्जिकमपि प्रत्येकं शाणमितम् ॥ १८६ १८७ ॥

तिलतैलमूर्च्छाविधिमाह, क्षलेति ।—शैत्ययुक्तं शीतोभूतम्, एतेन क्षत्वायां

मञ्जिष्ठारात्रिजिघ्रैर्जलधरनलिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः

सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ १८८ ॥

मूर्च्छनद्रव्याणां मावाया मूर्च्छाफलस्य च निर्देशः ।—

तैलस्त्रेण्डु कलाशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ

यि चान्ये त्रिफलापयोटरजनीक्रीवेरलोध्रान्विताः ।

सूचीपुष्पवटावरोहननिकास्तभ्याश्च पादाशिकाः

दुर्गंधं विनिहन्ति तैलमरुणं सौगन्धमाकुर्वते ॥ १८९ ॥

पञ्चपल्लवादिना मूर्च्छांशः कर्तव्यतादिनिर्देशः ।—

पत्रं पञ्चरसैर्युक्तं दधिलाक्षासमन्वितम् ।

मूर्च्छनं कारयेत् प्राज्ञो गन्धवर्णं जहाति च ॥ २०० ॥

पञ्चपल्लवम् ।—

आस्रजस्यकपित्यानां बीजपूरकविल्वयोः ।

गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ २०१ ॥

सत्यां मूर्च्छनद्रव्यप्रवेपो निषिध्यते इति मन्तव्यम् । अत्र विभोतकम् । सूचीपुष्पं  
केतकी, तस्य मूलं शास्त्रम् । अङ्घ्रि, वटावरोहः । सूचीपुष्पाङ्घ्रिरित्येकपदमिति  
केचित्, तथात्वे केतकीमूचमित्यर्थः । नीरं बालकम् । उपहितमथितैः मिश्रित-  
कुट्टितैरित्यर्थः । गन्धयोगं तैलस्य दौर्गन्ध्यादिकम् ॥ १८८ ॥

मञ्जिष्ठादिकं मूर्च्छनद्रव्यं किञ्चता मानेन शास्त्रमित्याह, तैलस्येति ।—इन्द्रु-  
कलाशिकैकविकसाभागः मञ्जिष्ठायाः तैलापेक्षया षोडशभागैकभागः । तस्याः  
मञ्जिष्ठायाः, पादाशिकाः चतुर्थांशः, तेन च त्रिफलादीनां प्रत्येकं मञ्जिष्ठापादाशौ  
शास्त्रः ॥ १८९ ॥

तैलस्य सौगन्ध सौवर्णसम्पादनार्थं पञ्चपल्लवादिना मूर्च्छनस्य कर्तव्यतामाह,  
पवनिति ।—पञ्चरसेर्युक्तं पत्रं बल्यमाणमासादीनां पदमित्यर्थः ; यद्वा—रसेः युक्तं  
सरसम्, आर्द्रमित्यर्थः, न तु शुष्कं, पञ्च पञ्चविधं, पत्रम् आसादीनां पत्रम् । यथै-  
तैलस्य स्वाभाविकवर्णम् ॥ २०० ॥

गन्धद्रव्याणां त्रिगुडिसम्पादनार्थं पञ्चपल्लवादिना मूर्च्छनस्य कर्तव्यतामाह,  
प्रसिद्धगन्धोर्विशेषः । गन्धकर्मणि तैलस्य दुर्गन्धनाशे सौगन्धसम्पादने चेत्तथैः ॥ २०१ ॥

अथ गन्धद्रव्यम् ।—

एलाचन्दनकुङ्कुमागुरुसुराकक्कोलमांसीशटी  
श्रीवामच्छदग्रान्यपर्णशशभृत्क्षौणिध्वजोशौरकम् ।  
कस्तूरीनखपूतिशैलजशुभामेथीलवङ्गादिकं  
गन्धद्रव्यमिटं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु ॥ २०२ ॥

अपरं गन्धद्रव्यम् ।—

देवदारुसरलागुरुत्वचं तेजपलघनकुष्ठकुङ्कुमम् ।  
ग्रान्यपर्णशटिकोप्रगन्धकं मांसिकासुनवखोटि कुन्दुर ॥ २०३ ॥  
पूतिकं मधुरिकैलया नखी चन्दनं सपमरं प्रियङ्गुकम् ।  
मेथिकामदसुवास्यचम्पकं देवताङ्गनालिकासपृक्कया ॥ २०४ ॥  
कक्कोलकं कल्कममानि तैले देयानि सर्वाणि सुगन्धिकानि ।  
अन्यान्यशेषाणि हितानि वैद्यैर्वातापहारीणि सुयोजितानि ॥ २०५ ॥

मतान्तरम् ।—

कुष्ठञ्च नालुका पूतिरुशीरं श्वेतचन्दनम् ।  
जटामांसी तेजपलं नखी मृगमदः फलम् ॥ २०६ ॥  
कक्कोलं कुङ्कुमं चोचं लताकस्तूरिका वचा ।  
सूक्ष्मैलाऽगुरु संस्तञ्च कर्पूरं ग्रान्यपर्णकम् ॥ २०७ ॥

अथ तैलानां सौमन्यापादनार्थं गुणोत्कर्षविधानाद्यं च गन्धपात्रोपयोगिद्रव्यमाह,  
एते ।—चन्दनं श्वेतचन्दन, सुगन्धितम् । सुरा मुरामासी । श्रीवासः नवनीत-  
खोटिः । छटं तेजपवम । शशभृत् कर्पूरः । क्षौणीध्वजः गुण्डारीचना शिक्षकं वा ।  
नखं नखी । पूतः खट्टाशी । शुभा लताकस्तूरिका ॥ २०२ ॥

मतान्तरीयगन्धद्रव्यमाह, देवदार्विति ।—त्वचं “दारुचिनि” इति प्रसिद्धम् ।  
सपमरं वचा । मांसिका जटामांसी । सुनवखोटिः नवनीतखोटिः । कुन्दुरः  
कुन्दरखोटिः । पमरा गन्धद्रव्यमेदः तथा सद्यः वर्तमानं सपमरम् । मदः कस्तूरी ।  
सुवास्यचम्पकं सुगन्धचम्पकम् । देवताङ्गः गन्धद्रव्यविशेषः । पृक्का “पिडि” इति  
प्रसिद्धम् । कल्कममानि क्लेदकल्कतुल्यानि ॥ २०३—२०५ ॥

मतान्तरे गन्धद्रव्यमाह, कुष्ठञ्चेति ।—फलं प्रियङ्गुकम् । चोचं “दारुचिनि” इति

श्रीवासः कुन्दरुदेव-कुसुमं गन्धमाढका ।

शिल्लकं मिषिका मेथी भद्रमुस्तं शटी तथा ॥ २०८ ॥

जातौफलं शैलजञ्च देवदारु सजीरकम् ।

एतानि गन्धद्रव्याणि तैलपाकेषु युक्तितः ॥ २०९ ॥

ग्रन्थान्तरस्य—

गन्धद्रव्याणां नावानिर्देशः ।—

तेलात् गन्धस्य पादाङ्गं दद्यात् तच्छास्त्रविद्विषक् ।

केचित् कल्कसमं प्राहुः सर्वत्र गन्धकर्मणि ॥ २१० ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

शर्षङम् । देवकुसुमं लवङ्गम् । गन्धमाढका खनानप्रसिद्धा । शिल्लकं शिल्लिरसः

इति प्रसिद्धम् । मिषिका मधुरिका ॥ २०६—२०९ ॥

गन्धद्रव्याणां परिमाणमाह. तेलादिति ।—पादाङ्गं अष्टमभागम् ॥ २१० ॥

इति परिभाषा-प्रदीपे चतुर्थखण्डव्याख्या समाप्ता ।



